राष्ट्र-निर्माण-माला
वर्ष ३, पुस्तक ४

प्रकाशक
जीतमल लूणिया, मंत्री

"सस्ता-मण्डल अजमेर ने हिंदी की उच्च कोटि की पुस्तकें सस्ती निकाल कर हिंदी की बडी सेवा की है। सर्व साधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए"

मदनमोहन मालवीय

सूचना—मण्डल से प्रकाशित पुस्तकों की सूची अन्त में दी हुई है सो पाठक अवश्य पढ़लें।

मुद्रक
मोहनलाल भट्ट
नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

दो शब्द

ये हि संस्पर्शजायोगाः दुःखयोनय एवते ।
आद्यतवन्त. कौन्तेय न तेषु रमते बुध ॥

गीता

समय बड़ा विचित्र है । हमारी आँखें खुल रही हैं । उज्ज्वल भविष्य हमें अपनी ओर बुला रहा है । पर दूसरी ओर शैतान भी हमें लुभाने के लिए मीठा-मीठा मुस्कुराता हुआ मौके की ताक में हमारी बगल मे खड़ा है । बड़ी सावधानी की आवश्यकता है ।

क्या इस तपोभूमि मे किसी को संयम और ब्रह्मचर्य के लाभप्रद होने मे सन्देह हो सकता था ? परन्तु यद्यपि वह घोर डरावनी रात्रि बीत गई, सूर्योदय होने को है, फिर भी इस सन्ध्याकाल में शैतान को अपना तांडव-नृत्य करने का मौका वहां मिल ही तो गया ।

वह कहता है—"छोड़ो यह संयम-वंयम की झंझट । विषयोपभोग तो मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है,स्वाभाविक आवश्यकता है । अतएव इस बात से न डरो कि विषयोपभोग के कारण परिवार बढ़ जायगा । इसकी दवा मेरे पास है ।"

पश्चिमी संसार शैतान के भुलावे में आकर विनाश की ओर दौड़ता जा रहा है। पर परमात्मा ने मानव-जाति को अभी भुला नहीं दिया है। दूरदर्शी आधुनिक ऋषि इस विनाश-यात्रा को रोकने के लिए अपनी शक्ति-भर कोशिश कर रहे हैं।

इधर कुछ वर्षों से भारत में भी संयम और ब्रह्मचर्य उपहास की दृष्टि से देखा जाने लगा है। सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधनों की ओर विषयी समाज झुक रहा है। यदि हम अपनी गलती को शीघ्र न समझेंगे तो भारत के लिए यह एक महान् संकट होगा।

हमें अपने देश मे दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हुई मानव-जीव-उत्पत्ति को ही केवल नहीं रोकना है बल्कि अपनी शक्ति, वीर्य और बुद्धि का विकास भी करना है। तभी हर बात में बढ़े-चढ़े अपने प्रतिपक्षियों द्वारा छीनी गई स्वाधीनता को पुनः प्राप्त करके हम उसका रक्षण कर सकेंगे।

पूज्य महात्माजी को पवित्र वाणी हमारे युवक भाइयों के लिए अपने विकारो से युद्ध करने मे ऐसे समय बड़ी सहायक होगी, यह समझकर हम उनकी इस विषय पर लिखी एक अमूल्य पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है हिन्दी जनता उससे पूरा लाभ उठावेगी।

प्रकाशक

विषय-सूची

परिशिष्ट

अनीति की राह पर

'त्यागभूमि'

जीवन, जागृति, बल और

बलिदान की

मासिक पत्रिका

वार्षिक मूल्य ४)

सस्ता-मंडल, अजमेर से प्रकाशित

अनीति की राह पर

१

विषय-प्रवेश

कृत्रिम उपायों से सन्तानवृद्धि रोकने के सम्बन्ध में जो लेख देशी समाचार पत्रों में निकलते हैं कृपालु मित्र उनके कतरन मेरे पास भेजते रहते हैं। नौजवानों से उनके चारित्र्य के सम्बन्ध में पत्रव्यवहार भी मेरा बहुत होता रहता है। परन्तु उन सब समस्याओं को जो इस पत्रव्यवहार से उठती हैं मैं इन पृष्ठों में हल नहीं कर सकता। यहां तो कुछ की ही विवेचना हो सकती है। अमेरिकन मित्र भी मेरे पास इस सम्बन्ध का साहित्य भेजते जाते हैं और कुछ तो मुझसे इस कारण नाराज भी हैं कि मैं कृत्रिम उपायों का विरोध करता हू। उन्हें रंज है कि ऐसा बडा बडा सुधारक होते हुए भी संततिनिरोध के सम्बन्ध मे मैं पुराने विचार रखता हू। और फिर मैं यह भी देखता हूं कि कृत्रिम उपायों के तरफदारों में सब देशों के कुछ बडे २ विचारवान स्त्री पुरुष भी हैं।

यह सब देख कर मैंने विचारा कि संततिनिरोध के कृत्रिम उपायों के पक्ष में कुछ न कुछ विशेष बात अवश्य ही होगी और इसलिए मुझे इस पर अधिक विचार करना चाहिए। मैं इस समस्या पर विचार कर ही रहा था और इस विषय के साहित्य के पढने

के विचार मे ही था कि मुझे एक अगरेजी पुस्तक पढने को मिली । इस पुस्तक मे इसी प्रश्न पर वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया है

मूल पुस्तक फ्रान्सीसी भाषा मे है और उसके लेखक हैं पाल ब्यूरो । किताब का जो नाम फ्रेन्च भाषा मे है उसका शब्दार्थ है ' भ्रष्टाचार ' ।

पुस्तक पढ कर मैंने यह सोचा कि लेखक के विचारो पर अपनी सम्मति देने से पहिले मुझे उचित है कि इन उपायो के पोषक जो मुख्य मुख्य ग्रन्थ हैं उन सब को पढ लू । इसलिए मैंने ' सरवेन्ट औव इन्डिया सोसाइटी ' से जो कुछ इस विषय पर ग्रन्थ मिल सके मॅगा कर पढे । काका कालेलकर ने जो इस विषय का अध्ययन कर रहे है मुझे एक पुस्तक दी और एक मित्र ने ' दी प्रेक्टीश्नर ' का एक विशेषाङ्क मेरे पास भेज दिया । इसमे इस विषय पर विख्यात डाक्टरो ने अपनी सम्मतिया प्रकट की हैं ।

मेरा इस विषय पर साहित्य इकट्ठा करने का केवल यही प्रयोजन था कि जहातक कि मेरे ऐसे वैद्यक के ज्ञान से रहित व्यक्ति की शक्ति मे है ब्यूरो के सिद्धान्तो की मै जाच कर लू । अकसर देखा जाता है कि चाहे उस विषय के दो आचार्य्य ही किसी प्रश्न पर क्यों न विचार कर रहे हो किन्तु सभी प्रश्नो के दो पहलू होते ही है और दोनो पर बहुत कुछ कहा जा सकता है । इसीलिए मैं पाठकों के सन्मुख ब्यूरों की यह पुस्तक रखने से पहिले कृत्रिम उपायों के पक्षवालों की सारी युक्तिया सुन लेना चाहता था । बहुत सोच विचार कर मै इस परिणाम पर पहुँचा हू कि कम से कम भारतवर्ष के लिए तो कृत्रिम उपायों की

कोई आवश्यकता है ही नही। जो लोग भारतवर्ष मे इन उपायो का प्रचार करना चाहते है उन्हे या तो इस देश की यथार्थ दशा का ज्ञान ही नही है या वे जानबूझ कर उसकी परवा नही करते। और फिर यदि यह सिद्ध हो जावे कि ये उपाय पाश्चात्य देशो के लिए भी हानिकारक है तब तो फिर भारतवर्ष की दशा पर विचार करने की आवश्यकता भी नही रहती।

आइए! देखे ब्यूरो क्या कहते है। उन्होने केवल फ्रान्स की दशा पर विचार किया है। परन्तु यह भी हमारे मतलब के लिए बहुत काफी है। फ्रान्स ससार के सब से अगुआ देशो मे गिना जाता है और जब ये उपाय वही सफल न हुए तो फिर और कहां होगे ?

असफलता क्या है ? इस सम्बन्ध मे भिन्न भिन्न राये हो सकती है। इसलिए अच्छा है कि 'असफल' शब्द से मेरा जो अभिप्राय है उसकी मै व्याख्या कर दू। यदि यह बात सिद्ध कर दी जावे कि इन उपायो के कारण लोगो के नैतिक आचार भ्रष्ट हो गये, व्यभिचार बढ गया और कृत्रिम गर्भ-निरोध केवल अपनी स्वास्थ्य-रक्षा अथवा गृहस्थियो की आर्थिक दशा ठीक रखने के लिए ही नही किया गया बल्कि अपनी कुचेष्टाओ की पूर्ति के लिए किया गया तो इन उपायो की असफलता मानी जायगी। यह तो है मध्यस्थ पक्ष की बात। उत्कृष्ट नैतिक सिद्धान्त तो कृत्रिम गर्भ-निरोध को कभी स्थान ही नही देता। उसके अनुसार तो विषयभोग केवल सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से ही करना चाहिए जैसे कि भोजन केवल शरीर रक्षा के लिए ही करना चाहिए। एक तीसरी श्रेणी के मनुष्य भी है। उनका कहना है कि 'नैतिक

आचार विचार सब फिजूल है और यदि नैतिक आचार कोई वस्तु है भी तो वह विषयभोग के संयम में नहीं बल्कि उसकी तृप्ति में ही है। खूब विषयभोग करो, विषयभोग ही जीवन का उद्देश्य है। बस इतना ध्यान रहे कि विषयभोग से स्वास्थ्य न बिगड़ जाय जिससे कि हमारा उद्देश जो विषयभोग है उसी की पूर्ति में अड़चन पड़े।' ऐसे लोगों के लिए मैं समझता हूं ब्यूरो ने यह पुस्तक नहीं लिखी है क्योंकि अपनी पुस्तक के अन्त में उन्होंने टॉमसन के ये शब्द लिखे हैं- 'केवल सच्चरित जातियों का ही भविष्य उज्ज्वल है।'

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में मोशिये ब्यूरो ने कुछ ऐसी सच्ची २ बातें हमारे सामने रक्खी हैं कि जिन्हें पढ़ कर हमारा हृदय कांप उठता है। ऐसी बड़ी २ संस्थाएं फ्रान्स में उठ खड़ी हुई हैं कि जिनका काम ही है लोगों की पशुवृत्ति को तृप्त करना। सब से बड़ा दावा जो कृत्रिम उपायों के हिमायतियों का है वह यह है कि इससे लुक छिप कर गर्भपात का होना रुक जायगा और भ्रूणहत्या बच जायगी। लेकिन उनका यह दावा भी गलत साबित होता है। ब्यूरो लिखते हैं कि फ्रान्स में यद्यपि पिछले २५ वर्षों से गर्भस्थिति न होने के उपाय लगातार किये जाते रहे परन्तु फिर भी गर्भपात के जुर्मों की संख्या जरा भी कम न हुई। उनका तो कहना है कि गर्भपात उलटे अधिक होने लगे। उनका विचार है कि प्रतिवर्ष करीब पौने तीन लाख से सवा तीन लाख तक गर्भपात होते हैं। अफसोस तो यह है कि लोगों को अब ऐसी बातें सुन कर इतनी चोट नहीं पहुँचती है जितनी पहले लगा करती थी।

२

अविवाहितों में भ्रष्टाचार

ब्यूरो कहते हैं कि गर्भपात के कारण वाल-हत्या, कुटुम्ब के अन्दर ही व्यभिचार और ऐसे २ ही वहुत से पाप वढ गये हैं कि जिन्हें देख कर छाती फटती है। यद्यपि अविवाहित माताओं के गर्भ न रह जाने देने में और रह जाने पर गिरा देने में अनेक प्रकार से सहायता पहुचायी जाती है परन्तु फिर भी उससे वालहत्या घटी नहीं वल्कि बहुत वढ गयी है। सभ्य कहलानेवाले पुरुषों के कान पर जूं भी नहीं रेंगती और अदालतों से धडाधड 'बेकसूर बेकसूर' के फैसले हो जाते हैं। वालहत्या करनेवाली माताओं को कुछ भी दण्ड नहीं मिलता।

ब्यूरो एक अध्याय केवल अश्लील साहित्य पर ही लिखते हैं। उनका कहना है कि साहित्य, नाटक और चित्र इत्यादि का जो मनुष्य के मन को आनन्द और आराम देने के लिए हैं बुरी नीयत के आदमी वडा दुरुपयोग कर रहे हैं। हर जगह ऐसा साहित्य विक रहा है। हर कोने में उसी की चर्चा हो रही है।

वडे २ वुद्धिमान मनुष्य ऐसे साहित्य की ही तिजारत करते हैं और करोडो रुपये इस व्यापार मे लगे हुए है। मनुष्यो के हृदयो पर इस साहित्य का इतना जहरीला असर पडा है कि उनके मन मे विषयभोग की एक और नयी खयाली दुनिया वन खडी हुई है।

इस के वाद ब्यूरो ने मोशिये रुइसन का यह दर्द नाक जुमला दिया है —

"इस अश्लील साहित्य से अनगिनत लोगो को बेहिसाब हानि पहुँच रही है। इस की विक्री से पता चलता है कि लाखो करोडो मनुष्य इस का अध्ययन करते हैं। पागलखानों के वाहर भी करोडो पागल रहते है। जिस प्रकार पागल अपनी एक निराली ही दुनिया मे रहता है उसी प्रकार पढते समय मनुष्य भी एक नयो दुनिया मे रहता है और इस ससार की सारी बाते भूल जाता है। अश्लील साहित्य पढनेवाले अपने विचारो की अश्लील दुनिया में भटकते फिरते है।"

इन सब दुष्परिणामो का कारण क्या है ? इन सवकी जड मे लोगो की यही भूल है कि 'विषयभोग किये बिना नही चल सकता और बिला इसके मनुष्य का पूर्ण विकास भी नही हो सकता' ऐसा विचार हृदय मे आते ही मनुष्य की दुनिया ही पलट जाती हैं। जिसको अबतक वह बुराई समझता था उसे अब भलाई समझाने लग जाता है और अपनी पाशविक इच्छाओ की तृप्ति के लिये नयी २ तरकीबे ढूँढने लगता है।

आगे चल कर ब्यूरो यह सावित करते है कि आजकल दैनिकपत्र, मासिक पत्रिकाओ, पुस्तिकाओ, उपन्यासो और तसवीरो इत्यादि से दिन ब दिन लोगो की इस नीच प्रवृत्ति को उत्तेजन ही मिलता जाता है।

अभी तक तो ब्यूरोने केवल अविवाहित लोगों की ही दुर्दशा दिखायी है। अब आगे चल कर वे विवाहित लोगों के भ्रष्टाचार का दिग्दर्शन कराते हैं। वे कहते हैं कि अमीरों, किसानों और औसत दर्जे के लोगों मे विवाह अधिकतर या तो झूठी प्रतिष्ठा या धन की लालच के कारण होते हैं। फला आदमी से विवाह करने से कोई अच्छी नौकरी लग जायगी या जायदाद मिलने की आशा है अथवा बुढापे मे या बीमारी मे कोई देखभाल करनेवाली रहेगी इत्यादि भिन्न २ उद्देश्यों से विवाह किये जाते हैं। कभी २ व्यभिचार से थक कर भी मनुष्य थोडे सयतरूप मे विषयभोग की ही जिन्दगी बिताने के लिए विवाह कर लेते हैं।

आगे चल कर ब्यूरो सच्चे २ प्रमाण दे कर यह दिखलाते हैं कि ऐसे विवाहो से व्यभिचार कम होने के बदले और बढता ही है। इस पतन मे वह कृत्रिम उपाय और साधन और भी सहायता करते हैं जो व्यभिचार को रोकते तो नहीं परन्तु उसके परिणाम को रोक लेते हैं। मैं उस दुखद भाग को छोड देता हू जिसमे बतलाया गया है कि गत २० वर्षों के अन्दर परस्त्री-गमन की वृद्धि हुई है और कचहरियो द्वारा दिये गये तलाको की सख्या दुगनी हो गयी है। 'मनुष्य के समान ही स्त्रियो के भी अधिकार होने चाहिए' इस सिद्धान्त के अनुसार स्त्रियो को विषयभोग करने की जो स्वतन्त्रता दे दी गयी है उसके सम्बन्ध मे भी मै केवल एक ही दो शब्द कहूगा। गर्भस्थिर न होने देने अथवा गर्भपात करा देने की क्रियाओं मे जो कमाल हासिल कर लिया गया है उससे पुरुष या स्त्री किसी को भी सयम के बन्धन की आवश्यकता ही नहीं रही है। फिर लोग यदि विवाह के नाम पर हँसे तो इस में अचम्भा ही क्या है? एक लोकप्रिय लेखक के यह वाक्य

ब्यूरो उद्धृत करते हैं, 'मेरे विचार से विवाह एक बडी जंगली और क्रूर प्रथा है। जब मनुष्यजाति बुद्धि और न्याय की तरफ कदम बढावेगी तो इस कुप्रथा को अवश्य ठुकराकर चकनाचूर कर डालेगी ... ... परन्तु पुरुष इतने बुद्धू और स्त्रियां इतनी कायर हैं कि वे किसी ऊचे सिद्धान्त के लिए कुछ कर ही नही सकतीं।'

ब्यूरो अब इन दुराचरणो के फलो पर और उन सिद्धान्तों पर जिनसे इन दुराचरणो का मडन किया जाता है सूक्ष्म विचार करके कहते हैं कि, "यह भ्रष्टाचार हमे एक नयी दिशा मे लिये जा रहा है। वह कौनसी दिशा है? वहा क्या है? हमारा भविष्य प्रकाशमय होगा या अन्धकारमय? उन्नति होगी अथवा अवनति? हमारी आत्मा को सौन्दर्य्य के दर्शन होगे या कुरूपता और पशुता की भयानक मूर्ति दिखायी देगी? यहा तो क्रान्ति फैली हुई है। क्या यह वैसी ही क्रान्ति है जो समय २ पर देश और जातियों के उत्थान से पहिले मचा करती है और जिसमें उन्नति का बीज रहता है? अथवा यह वही क्रान्ति है जो आदम के हृदय में उठी थी और जो हमें अपने जीवन के बहुमूल्य और आवश्यक सिद्धान्तों को तोड डालने को उकसाती है? हम क्या अपनी शान्ति और जीवन को ही इससे खतरे में नहीं डाल रहे हैं?" फिर ब्यूरो यह दिखलाते हैं और इसके पक्ष में प्रमाण भी खूब पेश करते हैं कि अबतक इन सब बातो से समाज को बेहिसाब हानि पहुँची है। ये दुराचार हमारी जिन्दगी की जड को ही काट रहे हैं।

३

विवाहितों में भ्रष्टाचार

विवाहित स्त्री पुरुषों का ब्रह्मचर्य द्वारा गर्भ-निरोध करना एक बात है और विषयभोग के साथ २ तथा उसके परिणाम से बचानेवाले साधनों की सहायता से सतानविग्रह करना बिल्कुल दूसरी। पहली सूरत में मनुष्यों का केवल लाभ ही लाभ है और दूसरी सूरत मे नुकसान के अलावा ओर कुछ हो नही सकता। ब्यूरो ने आंकडों और मानचित्रों की सहायता से यह दिखलाया है कि पाशविक वृत्तियों की लगाम ढीली करने और फिर सभोग के स्वाभाविक परिणामों से बचने के अभिप्राय से गर्भ-निरोध के कृत्रिम साधनों के बढते हुए प्रयोग का फल यही हुआ है कि न केवल पेरिस में, बल्कि समस्त फ्रांस में, मृत्यु-सख्या की अपेक्षा

जन्म–सख्या मे बहुत कमी हो गयी है । ८८ जिलो मे से, जिनमे कि फ्रास विभाजित है, ६८ मे पैदाइश की औसत, मौत की औसत से कम है और वहा अगर १०० बच्चे जन्म लेते है तो १६८ आदमी मरते है । उसके बाद टानगरो नामक एक जिले मे प्रत्येक १०० जन्मो के पीछे १५६ मृत्युए होती है । उन १९ जिलो में, जिनमे कि कही २, औसत से, जितने मरते है उससे अधिक जन्म लेते है, वहा भी इन दो सख्याओ का यह अन्तर बहुत ही थोडा है । ऐसे केवल दस ही जिले है जहा कि जन्म और मृत्यु की सख्या मे खासा फर्क है । कम से कम मोत, अर्थात् जहा कि जन्म–सख्या के साथ मृत्यु सख्या का अनुपात ७२ १०० का है, मोरबिहान और पासडिकैले मे पायी जाती है । ब्यूरो यह बतलाते हैं कि आबादी के कम होते जाने का यह क्रम जो उनकी समझमे आत्महत्या कहलायेगी अभी तक रोकी नही जा सकी है ।

तदुपरान्त ब्यूरो फ्रास के प्रान्तो की दशा का, प्रत्येक अग ले कर, निरीक्षण करते है और सन् १९१४ ई मे लिखे गये एक ग्रन्थ से नारमैंडी के बारे मे निम्न–लिखित वाक्य उद्धृत करते हैं "नारमैडी की आबादी गत ५० वर्षों मे ३ लाख कम हो गयी है—इसका अर्थ यह है कि वहा की उतनी आबादी कम हो गयी है जितनी कि समस्त ओर्न जिले की है । प्रत्येक बीस वर्ष मे फ्रास की जन–सख्या इतनी घट जाती है जितनी कि उसके एक सूबे की होती है । और चूके उसमे केवल पाच ही सूबे हैं, इसलिए सौ वर्षों मे तो उसके हरेभरे खेत फ्रास निवासियो से खाली ही हो जायँगे । "फ्रासनिवासी" शब्द का यहा मै जानबूझ कर प्रयोग कर रहा हू, क्योकि दूसरे लोग अवश्य ही उसमे आ कर

बस जायँगे—और यदि ऐसा हुआ तो वह शोचनीय स्थिति होगी। जर्मन लोग केन के आसपास वाली लोहे की खानें चला रहे हैं और हमारे देखते ही देखते चीनी (यह उनका पहला ही अवसर है) मजदूर भी उस जगह आ पहुँचे हैं जहां से कि विजेता विलियम इंग्लैंड जीतने को रवाना हुआ था।" ब्यूरो ने इस वाक्य की आलोचना करते हुए लिखा है कि दूसरे कई प्रान्तों की भी इससे कुछ अच्छी दशा नहीं है। आगे चल कर वे यह दिखलाने का भी प्रयत्न करते हैं कि आबादी की इस कमी का यह असर पड़ा है कि राष्ट्र की नैतिक शक्ति भी घट गयी है। तदुपरान्त वह फ्रांस के जातीय विकास उसकी भाषा और सभ्यता के अवसान का भी यही कारण बतलाते हैं।

इसके अनन्तर वे पूछते हैं कि विषयभोग से—संयम के त्याग से, फ्रांसीसी लोग सांसारिक सुख, आर्थिक उत्कर्ष, शारीरिक स्वास्थ्य तथा सभ्यता में पहले से कुछ बढ़ गये हैं क्या? इस के उत्तर में उनका कहना है कि स्वास्थ्य की वृद्धि के विषय में दो चार शब्द ही पर्य्याप्त होंगे। सभी दलीलों का, क्रमबद्ध रूप से, उत्तर देने की हमारी इच्छा चाहे जितनी प्रबल क्यों न हो, फिर भी इस बात को कि निरंकुश विषय-भोग से कभी शारीरिक स्वास्थ्य का सुधरना सम्भव है—इस लायक भी हम नहीं समझते कि इसका जवाब तक दिया जाय। चारों ओर से नवयुवकों तथा स्याने पुरुषों, सभी किसी की निर्बलता की चर्चा सुनायी पड़ती है। लड़ाई के पहले सैनिक विभाग के अधिकारियों को कई बार रंगरूटों की शारीरिक योग्यता की शर्तें ढीली करनी पड़ी थीं और सारे देश भर में लोगों की सहन-शक्ति में बहुत कमी हो गयी है। निस्सन्देह यह कहना अन्याय होगा कि असंयम ने ही यह बुरी अवस्था उत्पन्न

की है, परन्तु हा, यह भी इसका एक बडा कारण जरूर है। साथ ही साथ मद्यपान, रहन-सहन की गदगी इत्यादि का भी तो स्वास्थ्य पर बुरा असर पडता है किन्तु यदि हम ध्यानपूर्वक सोचेंगे तो यह बात हमारी समझ में आसानी से आ जायगी कि इस भ्रष्टाचार और इसकी पोषक घृणित भावनाओ का इन बलाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगो के भयकर प्रस्तार ने सर्व साधारण के स्वास्थ्य को बडी भारी क्षति पहुंचायी है। कुछ लोगो का खयाल है (जैसे कि माल्थस) कि उस समाज में जिसमें जन्म मर्यादा का खयाल रक्खा जाता है, देशकी सम्पत्ति उसी हिसाब से बढती जाती है जिस हिसाब से वहा जन्मवृद्धि पर अकुश रक्खा जाता है। लेकिन ब्यूरो इस विचार का समर्थन नहीं करते। इसके विरुद्ध वे अपने विचार का समर्थन जर्मनी और फ्रास की हालतों को लेकर इस प्रकार करते है कि जर्मनी में जहा औसत से, मृत्युए जन्मो की अपेक्षा कम होती हैं, राष्ट्र की सम्पत्ति बढती जाती है और फ्रांस में, जहा कि जन्म की सख्या मौतो की तायदाद की बनिस्बत कम है, धन का ही अभाव बढता जा रहा है। उनका कहना है कि जर्मनी के व्यापार के आश्चर्यजनक फैलाव का कारण अन्य देशवालो की अपेक्षा जर्मन मजदूरो का कोई अधिक बलिदान नही है। वे रोसीनोल का एक वाक्य उद्धृत करते हैं —"जर्मनी की आबादी जिस समय केवल ४,१०,००,००० थी लोग भूखो मर गये। मगर जब से उसकी आबादी ६,८०,००,००० हुई है, तब से वह दिन पर दिन धनवान होता जा रहा है।" उनका यह भी कथन है कि ये लोग जो कोई वैरागी तो है नही सेविंग-बैंकों मे प्रति वर्ष रुपया जमा करने में समर्थ हुए हैं। और सन् १९११ ई० मे उनके बाइस अरब फ्रैंक (फ्रास का सिक्का)

जमा थे लेकिन सन् १८९५ ई० में केवल ८ अरब जमा थे—यानी हर साल उनके हिसाब में साढे आठ करोड और जमा होते गये।

ब्यूरो ने इस बातको जरूर कबूल किया है कि जर्मनी की यह सब आश्चर्यजनक उन्नति केवल इसी कारण नहीं हुई है कि वहा जन्म की सख्या मृत्युसख्या से अधिक है। उनका यह आग्रह है — और वह ठीक है — कि अन्य प्रकार की सुविधाओं के होते हुए यह तो बिलकुल स्वाभाविक ही है कि जन्म-सख्या के बढने के फलस्वरूप राष्ट्रीय उन्नति भी हो। वास्तव में वे जो बात सिद्ध करना चाहते है, वह यह है कि जन्म-सख्या के बढते जाने से आर्थिक तथा नैतिक उन्नति का रुकना कुछ लाजिमी नही है। जहा तक जन्म-प्रतिशत से सम्बन्ध है, वहा तक हम हिन्दुस्तानी लोग फ्रास की स्थिति में हरगिज नही है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि जर्मनी की तरह हिन्दुस्थान में भी जन्म सख्या का बढते जाना हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए सहायक न होगा। परन्तु मैं ब्यूरो के अंकों, उनके सतर्क विचारो तथा निष्कर्षों को मद्दे नजर रखते हुए हिन्दुस्तान की परिस्थिति पर फिर कभी विचार करूंगा।

जर्मन परिस्थितियों पर, जहा कि जन्म-प्रतिशत का आधिक्य है, विचार करने के अनन्तर ब्यूरो कहते है "क्या हमे यह नही मालूम है कि योरप में फ्रास का स्थान चौथा है और राष्ट्रीय सपत्ति के लिहाज से तृतीय स्थान वाले देश से बहुत नीचे है? फ्रास राष्ट्र की अपनी सालना आमदनी ढाई हजार करोड फ्रैंक की है और जर्मन लोगों की पाच हजार करोड फ्रैंक है। हमारे राष्ट्र ने तीस वर्षों मे—यानी १८७९ से १९१४ तक—चार

हजार क्रोड फ्रैंक की घटी नहीं है। देश के समस्त विभागो मे खेतों मे काम करने वाले आदमियों की कमी है और किन्ही २ जिलों में तो पुराने आदमियो को छोड कर कोई भी नये आदमी दिखायी नहीं देते। और आगे चल कर वे लिखते हैं कि भ्रष्टाचार और कृत्रिम वध्यत्व के अर्थ ये हैं कि समाज की स्वाभाविक शक्तिया क्षीण हो जावे और सामाजिक जीवन मे वृद्ध पुरुषों का नि शक प्राधान्य रहे। फ्रास के हर १०० आदमियों मे बच्चे और युवक मिला कर सिर्फ १८ हैं, जब कि जर्मनी में २२ और इग्लैंड मे २१ हैं। युवकों की बनिस्बत बूढों का अनुपात मुनासिब से अधिक बढा हुआ है और दूसरे लोगों में भी, जिन्होने अपने भ्रष्टाचार से जवानी में ही बुढापा बुला लिया है, नैतिक रूप से हततेज जाति की सभी प्रकार की कापुरुषता विद्यमान है।

लेखक यह भी कहते हैं कि हम लोग जानते हैं कि फ्रासीसी लोगों में अधिकाश शासक-वर्ग की इस शिथिल नीति के प्रति उदासीन है, क्योंकि उनकी समझ में यह जानने की कि किसकी खानगी जिन्दगी कैसी है, कोई जरूरत नहीं है। लियोपोल्ड मोनो का निम्न-लिखित कथन वे बडे खेद के साथ उद्धृत करते हैं

"अत्याचारियो पर गन्दी गालियों की बौछार करने तथा अत्याचार से पीडित लोगों के बन्धन काटने के लिए युद्ध करना सराहनीय अवश्य है, लेकिन उन लोगो के बारे मे क्या किया जावे जो या तो भय के कारण—या लालच से—अपनी आत्मा की रक्षा नहीं कर सके है—या उनके बारे में जिनका साहस पीठ ठोंके जाने या त्योरी बदलने पर बढ घट सकता है अथवा

उन आदमियों के विषय मे, जो शर्म और लिहाज को बाला-ए-ताक कर अपने उस शपथ को तोडते हैं जो कि उन्होंने अपनी यौवनावस्था मे खुशी और सजीदगी के साथ अपनी पत्नी के साथ किया था और उलटे अपने कृत्यों पर प्रसन्न होते है तथा उन आदमियों के बारे मे जो अपने निजके निरकुश स्वार्थ का शिकार बन कर अपनी गृहस्थी को दु खमय बनाते है ? ऐसे मनुष्य भला हमारे मुक्तिदाता क्यों कर बन सकते है ?'

लेखक और आगे चल कर कहते है

"इस प्रकार से, चाहे जिधर दृष्टि डाल कर देखे, हमको एक तो यह मालूम होगा कि हमारे नैतिक असयम के कारण व्यक्ति गृह तथा समाज को भारी चोट पहुँची है और दूसरे यह कि हमने अपने माथे बडी भारी आफत मोल ले रक्खी है। हमारे युवकों के व्यभिचार ने, गन्दी पुस्तकों तथा तसवीरों ने, धन के अभिप्राय से विवाह करने की रिवाज ने, मिथ्याभिमान, विलासिता तथा तलाक ने, कृत्रिम वंध्यत्व और गर्भपात ने राष्ट्र को अपग कर दिया है तथा उसकी बढत मार दी है। व्यक्ति अपनी शक्ति को सचित नही रख सका है और बच्चो की जन्म-सख्या की कमी के साथ २ क्षीण और दुर्बल सन्तति उत्पन्न होने लगी है। "यदि पैदाइशे कम हो तो बच्चे अच्छे होगे" यह उक्ति उन लोगों को प्रिय लगा करती थी, जिन्होंने कि अपने को वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के स्थूल भाव मे परिमित मान कर यह समझ रक्खा था कि मनुष्यो की उत्पत्ति को भी भेड-बकरी के उत्पादन की भाति माना जा सकता है। ऐसे ही लोगों पर आगस्ट कौम्टे ने तीव्र कटाक्ष से कहा था कि सामाजिक दोषो के ये नकली चिकित्सक व्यक्तियों तथा समाज के

मानस की गूढ़ जटिलता को तो समझने में सर्वथा असमर्थ हैं, लेकिन अगर वे पशु वैद्य होते तो अच्छा होता।

"सच तो यह है कि उन तमाम मनोवृत्तियों में, जो कि आदमी ग्रहण करता है, उन सब निर्णयों में जिनपर वह पहुँचता है, उन सब आदतों में जो कि वह बनाता है, कोई ऐसी नहीं है जो कि मनुष्य की शख्सी और जमाअती जिन्दगी पर उतना असर डालती हो जितना कि विषयभोग के साथ सम्बन्ध रखने वाली वृत्ति, और उस के निर्णय इत्यादि डालते हैं। चाहे मनुष्य उनकी रोक थाम करे चाहे वह स्वय उनके प्रवाह मे बहने लग जाय, उसके कृत्यों की प्रतिध्वनि सामाजिक जीवन के कोने २ मे भी सुनायी पड़ेगी, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि गुप्त से गुप्त कार्य भी अपना असर डाले बिना नहीं रह सकता। इसी रहस्य के बल पर हम अपने को किसी प्रकार की अनीति करते समय इस भुलावे मे डाल लेते हैं कि हमारे कुकृत्य का कोई दुष्परिणाम न होगा।

"अब रही अपने सम्बन्ध की बात—सो अपने विषय में पहले तो हम निर्द्वन्द्व हो बैठते हैं, (क्योंकि हमारे कृत्यो का हेतु हमारी ही इच्छा रही है) परन्तु जब हम समाज के विषय मे खयाल दौड़ाते हैं, तब उसे अपने से इतने ऊंचे पर समझते हैं कि वह हमारे कुकृत्यो की ओर देखेगा भी नहीं, और फिर ऊपर से हम गुप्त रीति से इस बात की भी आशा रखते हैं कि दूसरों मे पवित्रता और सदाचार की बुद्धि बनी ही रहेगी। सब से भद्दी बात तो यह है कि इस प्रकार का पोचा विचार कभी कभी केवल असाधारण और अपवाद स्वरूप समयो मे प्रायः सच निकल जाता है और फिर सफलता के मद मे भूल कर हम

अपना व्यवहार वैसा ही कायम रखते हैं और जब कभी मौका मिलता है, हम उसे न्यायसंगत ही ठहराते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि यही हमारी सब से बड़ी सजा है।

"लेकिन कोई दिन ऐसा भी जाता है जब कि इस व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाला उदाहरण अन्य प्रकार से हमको धर्मच्युत करने का कारण बनता है—हमारे प्रत्येक कुकृत्य का यह परिणाम होता है कि सदाचार से वह प्रेम करना जिसे हम 'दूसरों' मे विद्यमान समझते आये हैं हमारे लिए अधिक कठिन और साहसयुक्त बन जाता है। फल यह होता है कि हमारा पडोसी धोखा खाते २ ऊब कर हमारी नकल करने के लिये उतावला हो उठता है। बस, इसी दिन से अध पतन प्रारम्भ हो जाता है और प्रत्येक मनुष्य तुरन्त अपने कृत्यों के परिणामों का अनुमान कर पाता है और वह यह भी जान सकता है कि उसका उत्तर-दायित्व कहा तक है।

"उस गुप्त कार्य को हम एक कन्दरा में बन्द समझते थे। उस में से वह निकल पडा है। उसमें एक प्रकार की निराली स्फूर्ति के आ जाने से वह समस्त खंडों में फैल चुका है। सबको हर एक की भूल के कारण कष्ट सहन करना पडता है, और 'इक मछली सब जल गन्दा' वाली कहावत चरितार्थ होती है। और जैसे किसी जलाशय में पत्थर फेकने से सारा जलाशय क्षुब्ध हो उठता है उसी प्रकार प्रत्येक कृत्य का सामाजिक जीवन के दूर के कोने कोने मे भी असर पडता है।

जाति के रस-स्रोतो को अनीति तुरन्त ही सुखा देती है। वह पुरुष को शीघ्र क्षीण कर डालती है और उस का नैतिक और शारीरिक सत्व चूस लेती है।

४

संयम और ब्रह्मचर्य

भ्रष्टाचार के अनेक रूपों से व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज की अपार हानि होती है, यह लिखकर ग्रन्थकर्त्ता मनुष्य के स्वभाव के विषय में एक बात लिखते हैं। मनुष्य भूल से मान बैठता है कि मेरा अमुक काम स्वतन्त्र है, इस मे समाज को कोई हानि नही। किन्तु प्रकृति का नियम ही ऐसा है कि अत्यन्त गुप्त से गुप्त और व्यक्तिगत काम का भी असर दूर से दूर तक पडता है। अपने काम को पाप मानने वाले भी, बार २ यह आग्रह करके कि उनके उस काम का समाज से कोई संबंध नही है। पाप में इतने फँस जाते है कि अपने पाप को पाप मानने में भी उन्हे सन्देह होने लगता है और उसी पाप का वे प्रचार करने लगते है। पाप छिपा नही रह सकता किन्तु उस पाप

का जहर सारे समाज मे फैलता है । इस का अर्थ यह होता है कि गुप्त पाप से भी समाज को बडी हानि पहुँचती है ।

इसका उपाय तब क्या है? लेखक साफ २ बतलाते है कि कायदे कानून बनाकर इसे नहीं रोका जा सकता । केवल **आत्म संयम ही एक उपाय है** । इस लिए अविवाहितो के सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य्य के पक्ष मे लोकमत तैयार करना परमावश्यक है, जो लोग अपनी विषयेच्छा पर इतना काबू नहीं रख सकते है, उनके लिए विवाह करना आवश्यक है और विवाह के बाद अतिशय संयम के साथ उन्हे जीवन बिताना चाहिए—इत्यादि विषयों पर लेखक ने विस्तीर्ण विवेचन किया है ।

परन्तु कितने लोग ऐसा कहते है कि "ब्रह्मचर्य्य से स्त्री पुरुष के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है और यह कहना कि ब्रह्मचर्य्य पालन करो उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर और इस हक पर कि वे अपने इच्छानुसार सुख से जीवन बितावें, असह्य आक्रमण है ।" लेखक इस दलील का मुँहतोड जवाब देते है । विषयेच्छा भी नींद और भूख जैसी कोई वस्तु नहीं है कि जिसके बिना आदमी जी ही न सके । अगर हम नहीं खायें तो कमजोर हो जायेंगे, अगर सोवें नहीं तो भी बीमार पडेंगे, और अगर शौच को रोके तब भी कई बीमारियां होगी, किन्तु विषयेच्छा को तो हम खुशी से रोक सकते है और इस इच्छा को रोकने की ताकत भी भगवान् ने ही हमें दी है । आज कल विषयेच्छा स्वाभाविक इच्छा कही जाती है इसका कारण यह है कि आजकल की हमारी सभ्यता में कितनी एक ऐसी उत्तेजक बाते भरी पडी हैं जिनसे हमारे युवक युवतियो मे यह इच्छा समय से पहिले ही जाग्रत हो जाती है । इसके बाद लेखक ने कई बडे २

डाक्टरो के मतो का जबर्दस्त प्रमाण दिया है कि ब्रह्मचर्य से तन्दुरस्ती में फर्क पड नही सकता और इतना ही नही बल्कि उससे तन्दुरस्ती को बेहद नफा पहुँचता है ।

टूविंगन विश्वविद्यालय के अस्टर्लेन का कथन है कि "काम-वासना इतनी प्रबल नही होती कि जिसका विवेक या नैतिक बल से पूर्णतया दमन न किया जा सके । हा एक युवक युवती को उचित अवस्था पाने के पूर्व तक सयम से रहना सीखना चाहिए । उन्हे जान लेना चाहिए कि हृष्ट पुष्ट शरीर तथा दिन पर दिन बढती हुई स्फूर्ति उनके आत्मत्याग का पुरस्कार होगी ।

"यह बात जितनी बार कही जावे, थोडी है कि नैतिक तथा शरीर-सम्बन्धी सयम और पूर्ण ब्रह्मचर्य का एक साथ रहना भले प्रकार सम्भव है और विषयभोग न तो उपर्युक्त एक भी पहलू से और न धर्म की ही दृष्टि से न्यायसगत है ।"

लन्दन के रायल कालेज के प्रोफेसर सर लायनस बिली कहते है कि "श्रेष्ठ और शरीफ पुरुषो के उदाहरणो ने अनेक बार सिद्ध कर दिया है कि बडे से बडे विकार भी सच्चे और मजबूत दिल से तथा रहन-सहन के बारे में उचित सावधानी रखने से रोके जा सकते है । जब कभी सयम का पालन कृत्रिम साधनो से ही नहीं, बल्कि उसे स्वेच्छा से आदत मे दाखिल कर के किया गया है, तब तब उससे कभी नुकसान नही पहुँचा । सक्षेप मे, अविवाहित रहना अति दुष्कर नहीं है, लेकिन तभी जब कि वह किसी मनोवृत्ति का स्थूल रूप हो । पवित्रता का अर्थ कोरा विषय-निग्रह करना ही नहीं है, बल्कि विचारो मे भी शुचिता लाना है ।"

तत्ववेत्ता फोरल कहता है कि "व्यायाम से प्रत्येक प्रकार का शारीरिक वल वढता और मजवूत होता है—उसके विपरीत, किसी प्रकार की अकर्मण्यता उसके उत्तेजित करने वाले कारणो के प्रभाव को दवा देती है।

"विषय–सम्बन्धी सभी उत्तेजक वाते इच्छा को अधिक प्रवल कर देती है। उन वातो से वचने का फल यह होता है कि उनका प्रभाव मन्द हो जाता है और इस प्रकार इच्छा धीरे धीरे कम हो जाती है। युवक लोग यह समझते है कि विषय–निग्रह करना एक असाधारण काम है एव असभव है। किन्तु वे लोग जो स्वय सयम से रहते हैं, सिद्ध करते है कि पवित्रता का जीवन तन्दुरुस्ती विगाडे विना भी विताया जा सकता है।"

एक दूसरा विद्वान रिविग कहता है कि "मै २५ या ३० वर्ष तथा उससे भी अधिक आयु वाले लोगो को, जिन्होंने पूर्ण संयम रक्खा है, और उन लोगो को भी जिन्होने अपने विवाह के पूर्व उसे कायम रक्खा है, जानता हू। ऐसे पुरुषो की कमी नही है, हा, यह जरूर है कि वे अपना ढिढोरा नहीं पीटते है।

"मेरे पास बहुत से विद्यार्थियो के ऐसे अनेक खानगी पत्र आये हैं, जिन्होंने इस वात पर आपत्ति की है कि मैंने इस पर काफी जोर नही दिया कि विषयसयम सुसाध्य है।"

डा० एक्टन का कथन है कि "विवाह के पूर्व युवकों को पूर्ण सयम से रहना चाहिए और यह सभव भी है।"

सर जेम्स पैगट की धारणा है कि "पवित्रता से जिस प्रकार आत्मा को क्षति नही पहुँचती, उसी प्रकार शरीर को भी नही—और इन्द्रिय सयम सब से उत्तम आचरण है।"

डा० पेरियर कहते हैं कि "पूर्ण संयम के बारे में यह कल्पना करना कि वह खतरनाक है—बिल्कुल गलत खयाल है और उसको दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि यह बच्चों के ही मन में घर नहीं करता है, बल्कि उनके माता पिताओं के भी। नवयुवकों के लिये ब्रह्मचर्य्य शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक–तीनों दृष्टियो से, उनकी रक्षा करने वाली चीज है।"

मि० एंड्रू क्लार्क कहते हैं कि "संयम से कोई नुकसान नहीं पहुँचता—और न वह मनुष्य की स्वाभाविक बढत को ही रोकता है, वरन् बल को बढाता और बुद्धि को तीव्र करता है। असंयम से आत्म–शासन जाता रहता है, आलस्य बढता और शरीर ऐसे रोगों का शिकार बन जाता है, जो कि पुश्त-दर-पुश्त असर करते चले जाते हैं। यह कहना कि असयम नवयुवकों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है—केवल भूल ही नहीं है, बल्कि कठोरता भी है। यह झूठ भी है और हानिकारक भी।"

डा० सरब्लेड ने लिखा है कि "असयम के दुष्परिणाम तो निर्विवाद और सर्वविदित हैं, परन्तु सयम के दुष्परिणाम तो केवल कपोल–कल्पित हैं। ऊपरोक्त दो बातो में पहली बात का अनुमोदन तो बडे २ विद्वान करते हैं, लेकिन दूसरी बात को सिद्ध करने वाला अभी मिला ही नहीं है।"

डाक्टर मैंटेगजा अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं कि "ब्रह्मचर्य से होने वाले रोग मैंने नही देखे। आम तौर पर सभी कोई और विशेष रूप से नवयुवक गण ब्रह्मचर्य से तुरत ही होने वाले लाभो का अनुभव कर सकते हैं।"

डाक्टर ड्यूबाय इस बात का समर्थन करते हुए कहते है कि "उन आदमियों की बनिस्बत, जो कि पशु–वृत्ति के चंगुल से

बचना जानते है, वे लोग नामर्दी के अधिक शिकार होते है, जो कि विषय-शमन के लिए अपनी लगाम विल्कुल ढीली किये रहते है । " उनके इस वाक्य का समर्थन डाक्टर फीरी पूरे तैार पर करते है और फरमाते है कि " जो लोग मानसिक सयम कर सके वे ब्रह्मचर्य्य-पालन करे और इससे अपने स्वास्थ्य के वारे मे किसी प्रकार का भय न करे । विषय-भोग की इच्छा की पूर्त्ति के ऊपर स्वास्थ्य निर्भर नही रहता ।"

प्रोफेसर एल्फ्रेड फोर्नियर लिखते है " कुछ लोगो ने, युवको के आत्म-सयम के खतरो के वारे मे भद्दी और हलकी वाते कही है । परन्तु मै विश्वास दिलाता हूं कि यदि सचमुच मे आत्म सयम मे कोई खतरे कही है, तो मै उनसे विल्कुल अजान हू । और अगर्चे कि अपने पेशे मे उनके वारे मे जानकारी पैदा करने का मुझे पूरा मैाका था, तोभी एक चिकित्मक की हैसियत से उन के अस्तित्व का मेरे पास प्रमाण नही है ।

" इसके अतिरिक्त, शरीर-शास्त्र के ज्ञाता होने की हैसियत से मैं तो यह कहूगा कि लगभग २१ वर्ष की उम्र के पहले सच्ची वीर्य-पुष्टता आती ही नही है और विषय-भोग की आवश्यकता उसके पहले उठती हुई प्रतीत नही होती—और खास तैार पर उस हालत मे जब कि समय से पहले ही कुत्सित उत्तेजनाओ ने उस कुवासना को उत्तेजित न किया हो । विषयेच्छा प्राय वुरे तैार पर किये गये लालन-पालन का फल है ।

" खैर कुछ भी हो, यह वात तो निश्चित ही है कि इस प्रकार का खतरा, स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार चलने की अपेक्षा उसको रोकने मे वहुत कम है । मेरा आशय आप समझ ही गये होगे । "

अन्त में इतने विश्वस्त प्रमाण देने के बाद, लेखक ने, ब्रुशेल्स नगर में, १९०२ ई० मे ससार भर के बडे २ डाक्टरों की सभा में स्वीकृत किया गया यह प्रस्ताव उतारते हैं कि— "नवयुवकों को बतलाना चाहिए कि ब्रह्मचर्य्य के पालन से उनके स्वास्थ्य को कभी हानि नहीं पहुँच सकती बल्कि वैद्यक और शरीरशास्त्र की दृष्टि से तो, इसकी (ब्रह्मचर्य्य की) सिफारिश ही करनी पडेगी।" कुछ साल पहिले किसी ईसाई विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विभाग के भी सभी आचार्य्यों ने सर्व्व-सम्मति से घोषित किया था कि "हम सब लोगों के अनुभव में यह आया है कि यह कहना बिलकुल निराधार है कि ब्रह्मचर्य्य स्वास्थ्य के लिए कभी हानिकारक हो सकता है। हम लोगों के जानते इस प्रकार के जीवन से कभी कोई हानि नहीं होती।"

लेखक ने सारे विषय का इस प्रकार उपसहार किया है। "इस प्रकार अब आप सारा मामला सुन चुके कि समाजशास्त्री और नीतिशास्त्री पुकार पुकार कर कहते हैं कि विषयेच्छा भी नींद और भूख के जैसी, कोई वस्तु नहीं है कि जिसको तृप्त करना ही होगा। यह दूसरी बात है कि कुछ, असाधारण अपवाद छोड देने पडें, किन्तु सभी स्त्री-पुरुषों के लिए, बिना किसी बडी कठिनाई या दुःख के, ब्रह्मचर्य्य-पालन सहज है। सामान्यतः ब्रह्मचर्य्य से कभी कोई रोग नहीं होता है, किन्तु बहुत से भयकर रोगो की उत्पत्ति असयम में से ही होती है। यदि कभी वीर्य-रक्षा से रोग होना सभव भी था तो प्रकृति ने ही स्वास्थ्य की रक्षा के लिए, जरूरत से अधिक शक्ति के लिए स्वाभाविक स्खलन या मासिक धर्म्म द्वारा निकलजाने का मार्ग तैयार कर दिया है।"

डा० वीरी इसलिए ठीक ही कहते है कि “ यह सवाल, वास्तविक आवश्यकता या प्रकृति का नही है । यह बात सभी कोई जानते हैं कि अगर भूख की तृप्ति न हो या श्वास बन्द हो जाय तो कौन कौन से दुष्परिणाम सभव है । लेकिन कोई भी लेखक यह नही लिखता है कि अस्थायी या स्थायी, किसी भी प्रकार के सयम के फल स्वरूप फला—हलका भारी कोई सा भी—रोग हो सकता है। अगर ससार मे हम ब्रह्मचारियों की ओर देखे तो वे किसी से न तो चरित्रबल मे कम हैं, और न सङ्कल्पबल मे, शरीरबल मे तो जरा भी कम नही हैं। वे यदि विवाह भी करें तो गृहस्थधर्म्म के पालन की योग्यता मे भी, वे दूसरो से कुछ भी कम नही है। जो वृत्ति इस प्रकार सहज मे ही रोकी जा सकती है, वह न तो आवश्यक है और न स्वाभाविक ही । स्त्री पुरुष का यह सम्बन्ध हरगिज नही है कि चढती हुई उम्र मे विषयेच्छा पूरी की जावे—बल्कि ठीक उसके उलटा । शरीर की साधारण बढत के लिए पूर्ण सयम का पालन परमावश्यक है । इसलिए वय-प्राप्त युवक अपने बल का जितना अधिक सग्रह कर सके, उतना ही अच्छा है क्योकि उस उम्र मे, बचपन की बनिस्बत रोग को रोकने की शक्ति कम होती है । इस विकास काल मे—देह और मन की बढत के जमाने मे, प्रकृति को बहुत मिहनत करनी पडती है । इस कठिन समय मे किसी भी बात की अधिकता बुरी है, किन्तु खास कर विषयेच्छा की उत्तेजना तो एकान्त हानिकारक है । ”

५

व्यक्ति-स्वातंत्र्य की दलील

ब्रह्मचर्य्य से होने वाले शारीरिक लाभों का विचार हो चुका। अब लेखक इसके नैतिक और मानसिक लाभों पर प्रो० मॉन्टेगजा का अभिप्राय व्यक्त करते हैं —

"ब्रह्मचर्य्य से तुरत होने वाले लाभों का अनुभव सभी कर सकते हैं-नवयुवक तो विशेष कर के। ब्रह्मचर्य्य से तुरत ही स्मरण—शक्ति स्थिर और मग्राहक, बुद्धि उर्व्वरा, और इच्छा-शक्ति जबर्दस्त हो जाती है। मनुष्य के सारे जीवन में वह

रूपान्तर हो जाता है जिसका अनुभव स्वेच्छाचारियो को कभी हो नही सकता । ब्रह्मचारी नवयुवको की प्रफुल्लता, चित्त की शान्ति और चमक और उधर इन्द्रियो के दासो की अशान्ति बेचैनी और घबराहट मे आकाश—पाताल का अतर होता है । भला इन्द्रिय-सयम से भी कोई रोग होता हुआ सा कभी सुना गया है? परन्तु इन्द्रियो के असयम से होने वाले रोगो को कौन नहीं जानता? शरीर तो सड ही जाता है । उससे भी बुरा होता है मन और बुद्धि का बिगड जाना । स्वार्थ का प्रचार, इन्द्रियो की उद्दाम प्रवृत्ति, चारित्र्य की अवनति ही तो सर्वत्र सुनने मे आती है ।"

इतना होने पर भी वे लोग जो वीर्यनाश को आवश्यक मानते है कहते है कि इस पर रोक लगा कर तुम हमारे इस अधिकार पर कि हम अपने शरीर का मन-माना उपयोग करे रोक लगाते हो । इसका भी उत्तर लेखक ने इस प्रकार दिया है कि समाज की उन्नति के लिये यह रोक अवश्यक है ।

उनका कहना है—"समाज-शास्त्री के सामने कर्मो के परस्पर आघात प्रतिघात का ही नाम जीवन है । इन कर्मों का परस्पर कुछ ऐसा अनिश्चित और अज्ञात सम्बन्ध है कि कोई एक भी ऐसा कर्म हो नही सकता जिसको हम अकेला कह सके । उसका प्रभाव सर्वत्र पडेगा ही । हमारे छिपे से छिपे कर्मों का, विचारो का, मनोभावो का ऐसा गहरा और दूर तक प्रभाव पड सकता है कि उसका अन्दाजा लगाना भी हमारे लिए असम्भव हो जावे । यह कोई ऊपर से हमारा जोडा हुआ नियम नहीं है । यह मनुष्य का स्वभाव है—प्रकृति है । मनुष्य के सभी कामो के इस अखण्ड सम्बन्ध का विचार न कर के कभी २ कोई

समाज कुछ विषयों में व्यक्ति को स्वाधीन बना देना चाहता है। उस स्वाधीनता को स्वीकार करने से ही व्यक्ति अपने को छोटा बना लेता है—अपना महत्व खो देता है।

इसके बाद लेखक ने यह दिखलाया है कि जब हमें सब जगह सडक पर थूकने तक का अधिकार नहीं है तो भला वीर्य रूपी इस महा शक्ति को मन-माना खर्च करने का अधिकार हमें कहा से मिल सकता है? क्या यह काम ऐसा है जो ऊपर के बतलाये हुए समस्त कामो के पारस्परिक अखड सम्बन्ध से अलग है? बल्कि सच पूछो तो इसकी गुरुता के कारण तो इसका प्रभाव और भी गहरा हो जाता है। देखो अभी इस नवयुवक और लडकी ने यह सम्बन्ध किया है। वे समझते हैं कि उसमें वे स्वतन्त्र है—उस काम से और किसीका कुछ मतलब नहीं—वह केवल उन दोनो का ही है। वे अपनी स्वतन्त्रता के भुलावे में पड कर यह समझते है कि इस काम से समाज को न तो कोई सम्बन्ध है और न समाज का उस पर कुछ नियन्त्रण ही हो सकता है। यह बच्चो का लडकपन है। वे नहीं जानते कि हमारे गुह्य और व्यक्तिगत कर्मो का अत्यन्त दूर के कामो पर भी भयानक असर पडता है। इस प्रकार समाज को तुम नष्ट करना चाहते हो। चाहे तुम चाहो या न चाहो परन्तु जब तुम केवल आनन्द के लिए अल्पस्थायी वा अनुत्पादक ही सही परन्तु यौन-सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार दिखलाते हो तो तुम समाज के भीतर भेद और भिन्नता के बीज डालते हो। हमारे स्वार्थ वा स्वच्छन्दता से हमारी सामाजिक स्थिति बिगडी हुई तो है ही परन्तु अभी भी सभी समाजों में ऐसा ही समझा जाता है कि उत्पादिका शक्ति के

व्यवहार सुख में जो जिम्मेदारी आ पडती है उसे सब कोई खुशी २ उठावेगे। इस जिम्मेदारी को भूल जाने से ही आज पूजी और श्रम, मजदूरी और विरासत, कर और सैनिक-सेवा, प्रतिनिधित्व के अधिकार इत्यादि पेचीले सवालो का जन्म हुआ है। इस भार को अस्वीकार करने से एक वार मे ही वह व्यक्ति समाज के सारे सगठन को हिला देता है। और इस प्रकार दूसरे का बोझा भारी कर आप हल्का होना चाहता है, इसलिए वह किसी चोर डाकू वा लुटेरे से कम नही कहा जा सकता। अपनी इस शारीरिक शक्ति के सुव्यवहार क लिए भी समाज के सामने हम वैसे ही जिम्मेदार है जैसे अपनी और शक्तियो के लिए। हमारा समाज इस विषय मे निरक्ष है और इसलिए उसे हमारी अपनी समझदारी पर ही उसके उचित उपयोग का भार रखना पडा है, इस कारण इसकी जिम्मेवारी तो और भी कुछ वडी ही होनी चाहिए।

स्वाधीनता वाहर से तो सुख सी मालूम होती है परन्तु सचमुच में वह एक भार सी है। इसका अनुभव तुम्हें पहली वार में ही हो जाता है। तुम समझते हो कि मन और विवेक दोनो में एकता है परन्तु दोनो मे तुम्हारी ही शक्ति है और दोनों में बहुत भेद देखने मे आया करता है। उस समय किसकी मानोगे? तुम्हारी विवेक बुद्धि से जो उत्पन्न होता है उसकी या उसकी जो तुम्हारी नीची से नीची इन्द्रिय-लालसा से? यदि विवेक की इन्द्रिय-लालसा के ऊपर विजय होने मे ही समाज की उन्नति है तब तो तुम्हें इन दोनो मे से एक वात को चुन लेने मे कोई कठिनाई नही होगी। परन्तु तुम यह भी कह सकते हो

कि मै शरीर और आत्मा दोनो का साथ २ पारस्परिक विकास चाहता हू। ठीक। परन्तु यह भी याद रखो कि आत्मा के कुछ भी विकास के लिए कुछ न कुछ तो सयम तुम्हे करना ही होगा। पहले इन विलास के भावो को नष्ट कर दो तो पीछे तुम जो चाहोगे हो सकोगे।

महाशय गैवरियल सीलेस भी कहते हैं कि हम वार वार कहते फिरते है कि हमें स्वतन्त्रता चाहिए—हम स्वतन्त्र होगे। परन्तु यह स्वतन्त्रता कर्त्तव्य की कैसी कठोर बेडी वन जाती है यह हम नही जानते। हमे यह नही मालूम कि हमारी इस नकली स्वतन्त्रता का अर्थ है इन्द्रियो की गुलामी जिससे हमें न तो कभी कष्ट का अनुभव होता है और न हम कभी इसलिए उसका विरोध ही करते है।

सयम मे शान्ति है और असयम तो अशान्ति रूप महाशत्रु का घर है। कामेच्छाए तो सभी समयो मे कष्टदायी हो सकती हैं परन्तु युवावस्था में तो यह महाव्याधि हमारी बुद्धि को विलकुल विगाड दे सकती है। जिस नवयुवक का किसी स्त्री से पहले पहल सबध होता है वह नहीं जानता कि वह अपने नैतिक मानसिक और शारीरिक जीवन के अस्तित्व के साथ खेल कर रहा है। उसे यह भी नही मालूम कि उसके इस काम की याद उसे वार २ आकर सतायेगी और उसे अपनी इन्द्रियो की वडी बुरी गुलामी करनी पडेगी। कौन नहीं जानता कि एक से एक अच्छे लडके, जिन से आगे वहुत कुछ आशा की जा सकती थी, चौपट हो गये और उनके पतन का आरभ उनके पहली वार के नैतिक पतन से ही हुआ था।

मनुष्य का जीवन तो उस वरतन के समान है जिस मे

तुम यदि पहली बूद मे ही मैला छोड देते हो तो फिर लाख पानी डालते रहो सभी का सभी गदा होता जायगा।

इग्लैण्ड के प्रसिद्ध शरीर शास्त्री महाशय केन्ड्रिक ने भी तो कहा है कि "कामेच्छा की सतुष्टि केवल नैतिक दोप भर ही नहीं है। उससे शरीर को भी हानि पहुँचती है। यदि इस इच्छा के सम्मुख तुम झुकने लगो तो वह तुम्हारे ऊपर और भी अत्याचार करने लग जायगी और यदि तुम्हारा मन सदोप है तो तुम उसकी बाते सुनोगे और उसका बल वढाते जाओगे। ध्यान रखो कि हरदफा का नया काम, तुम्हारी गुलामी की जजीर की एक नयी कडी बन जावेगी।

फिर तो इसे तोडने की तुम्हे शक्ति ही न रहेगी और इस प्रकार तुम्हारा जीवन, एक अज्ञान जनित अभ्यास के कारण नष्ट हो जायगा। इसका सब से अच्छा उपाय है ऊचे विचारों को पैदा करना और सभी कामों में संयम से काम लेना।"

महाशय ब्यूरो ने इसके बाद डाक्टर फ्रैन्क का मत दिया है कि "कामेच्छा के ऊपर मन और इच्छा का पूरा अधिकार है क्योंकि यह कोई आवश्यकता नहीं है, हाजत नही है। यह तो केवल एक इच्छा भर है जिस का पालन हम जानबूझ कर अपनी राजी से ही करते हैं न कि स्वभाव के वश हो कर।"

६

आजीवन ब्रह्मचर्य

विवाह के पहले और बाद भी ब्रह्मचर्य्य से क्या लाभ, होते हैं और वह कहा तक शक्य है, इस बात को लिख कर, आजीवन ब्रह्मचर्य्य कहा तक सभव है और उसका क्या महत्त्व है, अब इस विषय पर लेखक लिखते हैं

" कामवासना की गुलामी से मुक्ति पाने वाले वीरों मे सबसे पहले उन युवक युवतियो का नाम लिया जायगा जिन्होने किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए आजीवन अविवाहित रह कर ब्रह्मचर्य्य पालन का निश्चय कर लिया है। उनके इस दृढ निश्चय के अलग २ कारण होते हैं। कोई असहाय माता-पिता की सेवा को अपना कर्त्तव्य मानता है, तो कोई अपने मातृ-पितृ-हीन छोटे भाई-बहिनो के लिए स्वय माता-पिता का स्थान

ग्रहण करता है, तो कोई ज्ञानार्जन मे ही जीवन विताना चाहता है, तो कोई रोगियो वा गरीबो की सेवा मे, तो कोई धर्म या जाति अथवा शिक्षा की सेवा मे ही जीवन लगा देना चाहता है। इस निश्चय के पालन मे किसी को तो अपने मनोविकारो से भयङ्कर युद्ध करना पडता है, तो किसी के लिए कभी २ भाग्यवशात् पहले मे ही रास्ता बहुत साफ हुआ रहता है। वे अपने मन में अपने या परमात्मा के सम्मुख प्रतिज्ञा कर लेते है कि जो ध्येय उन्होने चुन लिया वह चुन लिया और अब फिर विवाह की बात करना व्यभिचार होगा। प्रसिद्ध चित्रकार माइकेल ऐन्जेलो से जब किसी ने कहा कि तुम विवाह कर लो तो उसने जवाब दिया कि 'चित्रकारी ही मेरी ऐसी पत्नी है जो सौत का रहना बरदाश्त न करेगी।'"

अपने यूरोपीय मित्रो के अनुभव से मै महाशय ब्यूरो के बतलाये हुए प्राय सभी प्रकार के मनुष्यो का उदाहरण दे कर उनकी इस बात का समर्थन कर सकता हू कि बहुत मित्रो ने आजीवन-ब्रह्मचर्य्य का पालन किया है। हिन्दुस्तान को छोड कर और किसी भी ढंग मे बचपन से ही विवाह की बातें बालको को सुनायी नहीं जाती है। यहा तो माता-पिता की एक ही अभिलाषा रहती है लडके का विवाह कर देना और उसकी आजीविका का उचित प्रबन्ध कर देना। पहली बात से तो असमय में ही बुद्धि और शरीर का ह्रास हो जाता है और दूसरी बात से आलस्य आ घेरता और कभी २ दूसरे की कमाई पर जीने की लत लग जाती है। ब्रह्मचर्य्य और स्वेच्छा से लिये हुए दारिद्र्य-व्रत की हम अत्यधिक प्रशसा करते है। बस, यह काम तो केवल योगियो और महात्माओ से ही सम्भव है और

यह भी कहा करते है कि योगी और महात्मा असाधारण पुरुष होते है। हम यह भुला देते है कि जिस समाज की ऐसी गिरी हालत हो उसमें सच्चे योगी और महात्मा का होना ही असम्भव है। इस सिद्धान्त के अनुसार कि सदाचार की चाल यदि कछुवे की चाल के समान धीमी और अबाध है, तो दुराचार खरहे की तरह दौड़ता है। हमारे पास पश्चिम के देशों से व्यभिचार का सौदा बिजली की चाल से दौड़ा जाता है और अपनी मनोमोहिनी चमकदमक से हमारी आखों को चकमका देता है और हम सत्य को भूल जाते है। क्षण क्षण मे पश्चिम से तार के द्वारा जो वस्तु पहुँचती है और प्रतिदिन परदेशी माल से लदे हुए जो जहाज उतरते है, उनमे हो कर जो जगमगाहट आती है, उसे देख कर ब्रह्मचर्य व्रत लेने मे हमें शर्म तक आने लगती है और निर्धनता के व्रत को हम पाप कहने को तैयार हो जाते है। परन्तु आज हिन्दुस्तान मे हमें पश्चिम का जो दर्शन हो रहा है, पश्चिम हूबहू वैसा नहीं है। जिस प्रकार दक्षिण आफ्रिका के गोरे वहां के रहने वाले थोड़े से हिन्दुस्तानियो के आधार पर ही सभी हिन्दुस्तानियों के चरित्र का अनुमान करने में भूल करते है, इसी प्रकार हम भी इन थोड़े से नमूनों पर सारे पश्चिम का अन्दाजा लगाने में अन्याय करते है। जो लोग इस भ्रम का पर्दा हटा कर भीतर देख सकते है, वे देखेंगे कि पश्चिम में भी वीर्य और पवित्रता का एक छोटा सा परन्तु अटूट झरना मौजूद है। यूरोप की इस महा मरुभूमि में भी ऐसे झरने है, जहां जो कोई चाहे जीवन का पवित्र से पवित्र जल पी कर सन्तुष्ट हो सकता है। ब्रह्मचर्य और स्वेच्छापूर्वक निर्धनता के व्रत. वहा कितने लोग लेते है और फिर कभी भूल कर भी इसके लिए गर्व नहीं करते—कुछ

शोर नही मचाते ' यह सब नम्रता के साथ किसी स्वजन अथवा स्वदेश की सेवा के लिए करते हैं। हम लोग धर्म की बातें इस प्रकार करते हैं मानो—धर्म में और व्यवहार में कोई सम्पर्क ही न हो और यह धर्म केवल हिमालय के एकान्तवासी योगियों के लिए ही हो। जिस धर्म का हमारे दैनिक आचार-व्यवहार पर कुछ असर न पडे, वह धर्म एक हवाई ख्याल के सिवाय और कुछ नहीं है। सभी नौजवान पुरुष और स्त्रियां, जिनके लिए यह पत्र प्रति सप्ताह लिखा जाता है, समझ लेवे की अपने पास के वातावरण को शुद्ध बनाना और अपनी कमजोरी को दूर करना तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना उनका कर्त्तव्य है और यह भी जान ले कि यह काम उतना कठिन नहीं है, जितना कि वे सुनते आये हैं।

अब देखना चाहिए कि लेखक और क्या कहते है। उनका कहना है कि यदि हम यह मान भी लें कि विवाह करना आवश्यक ही है तौ भी न तो सब कोई विवाह कर ही सकते हैं और न सब के लिए इसे आवश्यक और उचित ही कहा जाएगा। इसके अलावा कुछ लोग ऐसे भी तो होते है कि जिन्हें ब्रह्मचर्य के पालन के सिवा दूसरा रास्ता रह ही नहीं जाता है—(१) अपने रोजगार या गरीबी के कारण मजबूरन् जिन्हे विवाह करने से रुकना पडता है (२) जिन्हें अपने योग्य वर या कन्या मिलती ही नहीं है (३) अन्त मे, वे लोग जिन्हें कोई ऐसा रोग हो जिसके सन्तान मे भी आ जाने का भय हो या वे जिन्हें किसी और कारण से विवाह का बिल्कुल विचार ही छोड देना पडता हो। किसी उत्तम कार्य या उद्देश्य के लिए, अशक्त और सम्पन्न स्त्री पुरुषों के ब्रह्मचर्य-व्रत मे उन लोगों

को भी जो लाचार ब्रह्मचारी बने रहते है, अपने व्रत के पालन मे सहारा मिलता है। स्वेच्छा पूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत को जिसने धारण किया है, उसे तो उसका यह ब्रह्मचारी का जीवन अपूर्ण नहीं मालूम होता, बल्कि इसे ही वह ऊचा और परमानन्द से भरा हुआ जीवन मानता है। विवाहित अविवाहित और दोनो प्रकार के ब्रह्मचारियो को उनके व्रत पालन मे उससे उत्साह मिलता है। वह उनका पथप्रदर्शक बनता है।

महाशय फोर्स्टर का मत ग्रन्थकर्ता देते हैं —"ब्रह्मचर्य-व्रत विवाह सस्था का बडा भारी सहायक है, क्योंकि यह तो विषयेच्छा और विकारो से मनुष्य की मुक्ति का चिह्न स्वरूप है। विवाहित स्त्री पुरुष इसे देख कर यह समझते है कि वे परस्पर एक दूसरे की केवल विषयेच्छा की ही पूर्ति के साधन नही हैं, बल्कि विषयवासना के रहते हुए भी वे स्वतत्र और मुक्त आत्मा है। ब्रह्मचर्य का मजाक उडानेवाले लोग यह नही जानते कि उसका मजाक उडा कर के वे व्यभिचार और बहु विवाह का समर्थन कर रहे है। यदि यह मान लिया जाय कि विषयेच्छा को तृप्त करना परमावश्यक है, तो फिर विवाहित स्त्री पुरुषो से किस प्रकार पवित्र जीवन की आशा रक्खी जा सकती है? वे यह भूल जाते है कि रोगवश या किसी और कारण से कभी २ दम्पति मे से एक की अशक्तता से दूसरे के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य्य हो जाता है। अगर और कुछ नहीं तो केवल एक इसी कारण से ब्रह्मचर्य्य की जितनी महिमा हम स्वीकार करते है, उतने ही ऊचे पर हम एक-पत्नी-व्रत के आदर्श को चढाते है।"

७

विवाह का पवित्र संस्कार

आजीवन ब्रह्मचर्य के अध्याय के बाद, कई अध्यायों में लेखक ने विवाहित जीवन के कर्त्तव्य और विवाह की अखण्डता पर विचार किया है। यद्यपि अखण्ड ब्रह्मचर्य को ही वे सर्वोत्तम मानते हैं, परन्तु जन-साधारण के लिए वह शक्य नहीं है, इसलिए वैसे लोगों के लिए विवाह-बन्धन केवल आवश्यक ही नहीं, वरन् कर्त्तव्य के बराबर है। उन्होंने दिखलाया है कि विवाह के कर्त्तव्यों और उद्देश्यों को ठीक २ समझ लेने पर, सन्तति-निरोध के

समर्थन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। इस नैतिक असंयम का कारण हमारी उलटी नैतिक शिक्षा है। विवाह का मजाक उड़ाने वाले लेखकों के तर्कों का जवाब दे कर लेखक कहते हैं —

पुरुष और स्त्री के आजीवन साहचर्य्य का नाम विवाह है। विवाह केवल आपस का एक ठेका भर ही नहीं है, बल्कि यह एक धार्मिक संस्कार है— धर्म-सम्बन्ध है। यह कहना भूल है कि विवाह के नाम से सभी प्रकार के असंयम क्षम्य हैं। असंयम से विवाह के असली उद्देश्य को धक्का पहुँचता है। सन्तानोत्पत्ति के सिवाय, और सभी प्रकार की कामवासना की तृप्ति, सच्चे प्रेम के लिए बाधक है और समाज तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक। सन्त फ्रांसिस का कहना है कि कड़ी दवायें खाना हमेशा खतरनाक ही होता है। यदि कुछ भी गड़बड़ी हुई तो हानि होना सम्भव है। कामवासना की दवा के रूप में विवाह बड़ी अच्छी दवा है, परन्तु कड़ी है और इसलिए बहुत सँभाल कर यदि इसका व्यवहार न किया जाय, तो खतरनाक भी है।

इसके बाद लेखक विवाह सम्बन्ध स्थापित करने या तोड़ने में अथवा सीधे सीधे, तज्जनित कर्त्तव्यों की पर्वा न कर के असंयत जीवन बिताने में व्यक्तिगत स्वाधीनता का विरोध करते हैं और एक पत्नीव्रत पर ही जोर देते हैं —

"यह गलत है कि विवाह करने या स्वार्थमय ब्रह्मचर्य्य का जीवन बिताने का हमें पूरा अधिकार है। और इससे भी कम अधिकार विवाहित स्त्री पुरुष को परस्पर के राजीनामे से विवाह-संयोग तोड़ने का है। उनकी स्वतन्त्रता एक दूसरे को चुन लेने भर में ही होती है और वे चुनते हैं यह ठीक २ समझ कर कि एक दूसरे के साथ विवाह के कर्त्तव्यों का वे

ठीक २ पालन कर सकेंगे। फिर एक बार जब यह सस्कार हो गया, तब उसका प्रभाव इन दो मनुष्यों के बाहर समाज पर बहुत दूर तक पडने लगता है। भले ही आज उसे हम न समझ सके, परन्तु जो समझते है वे हमारे आज के सामाजिक दुःखों की जड को पहचानते हैं। उन्हें इससे सन्तोप होगा कि जब सभी सस्थाओं का विकास होता है, तो इस विवाह सस्था मे भी परिवर्त्तन होना आवश्यक है। वे तो देखते हैं कि आज जब परस्पर के केवल राजीनामे से ही तलाक देने के अधिकार माँगे जाते है, तो समय पाकर हमारे होनेवाले कष्टों से ही एक-पत्नी-व्रत की महिमा का हमे ज्ञान होगा।

"विवाह की अखण्डता का नियम अकारण शोभा के लिए ही नही है। व्यष्टि के और समष्टि के सामाजिक जीवन की बडी नाजुक बातों मे इसका सम्बन्ध है। जो लोग विकासवादी है, उन्हें सोचना चाहिए कि जाति की यह अनिश्चित उन्नति आखिर किस रास्ते होगी? उत्तर-दायित्व के भाव की वृद्धि व्यक्ति का स्वेच्छा से लिया हुआ सयम, सन्तोप और उदारता की वृद्धि, स्वार्थ का नियमन, क्षणिक क्षोभों के विरुद्ध भावुकता का जीवन—मनुष्य के आन्तरिक जीवन की इन बातों को हम भुला नहीं सकते। सभी प्रकार की आर्थिक वा सामाजिक उन्नति मे इनका ख्याल रखना ही होगा, नही तो उन उन्नतियों का कोई मूल्य नहीं गिना जा सकता। इसलिए सामाजिक और नैतिक दोनो दृष्टियो मे यदि हम भिन्न २ प्रकार के काम-सम्बन्ध पर दृष्टि डालते हैं, तो हमे इस बात का विचार करना ही पडेगा कि हमारे सारे सामाजिक जीवन की शक्ति को बढाने के लिए कौन सी सस्था सब से अच्छी है या दूसरे शब्दो में मनुष्य के

आन्तरिक जीवन के स्वार्थ—त्याग और बलिदान की वृद्धि तथा चञ्चलता इत्यादि के नाश के लिए, कौन सा जीवन सब में अच्छा होगा? इन प्रश्नों पर विचार करने पर कहना ही पडेगा कि एक-पत्नी-व्रत के सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी महत्व के कारण उससे अच्छा जीवन दूसरा नहीं है। पारिवारिक जीवन में ही इन सब मनुष्योचित गुणों का विकास होता है और अपनी अखण्डता के कारण दिन पर दिन इस सम्बन्ध की गभीरता भी बढती ही जाती है। यों भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एक—पत्नी-व्रत ही है।"

इसके बाद लेखक औगस्ट कौम्टे के विचार लिखते हैं कि "हमारे ऊपर समाज का नियन्त्रण परमावश्यक है, नहीं तो धीरे २ हमारा जीवन किसी काम का न रह जायगा। काम-वासना की तृप्ति ही विवाह का उद्देश्य नहीं है।"

डाक्टर टूलो लिखते हैं कि "विवाहित जीवन के सुखों में इस भूल से बहुत बाधा पडती है कि कामप्रवृत्ति की पूर्ति परमावश्यक है। ठीक इसके उलटे मनुष्य की प्रकृति है इन प्रवृत्तियों का दमन करना। छोटा बच्चा अपनी शारीरिक प्रवृत्तियों का दमन करना सीखता है, तो बडे लोगों को मन की प्रवृत्तियों के दमन का अभ्यास करना पडता है। हम लोग जिसे प्राय स्वभाव या प्रवृत्ति के नाम से पुकारते हैं, वह हमारी कमजोरी है। जिस में वह शक्ति है, वह पुरुष उचित अवसर पर उस शक्ति का प्रयोग भी कर सकता है।"

८

उपसंहार

अच्छा, इस लेख-माला को अब समाप्त करना चाहिए। ब्यूरो ने माल्थस के सिद्धान्तों की जिस जिस प्रकार समीक्षा की है उसे जानना हमारे लिए आवश्यक नहीं है।

"चूँकि इस समय मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ रही है, इसलिए यदि यह अभीष्ट हो कि समस्त मनुष्य-जाति समूल नष्ट न हो जाय तो सन्तति-निरोध को आवश्यक मानना ही पड़ेगा,"— इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर के माल्थस ने अपने जमाने के

लोगो को चकित कर दिया था। खैर, माल्थस ने तो इन्द्रिय-सयम ही सिखलाया था, पर आजकल का नया माल्थसी सिद्धान्त तो सयम की शिक्षा न दे कर पशुवृत्ति की तृप्ति के दुष्परिणामो से बचने के लिए यत्रो और ओषधियों का व्यवहार सिखलाता है। नैतिक रीति से—अर्थात् इन्द्रिय-सयम के द्वारा—सतति-निरोध का समर्थन मो० ब्यूरो बहुत खुशी से करते हैं परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं वह दवाओं या यन्त्रों की सहायता से सतति-निरोध का निषेध एव घोर विरोध करते हैं। इसके बाद लेखक ने श्रमजीवियो की दशा तथा उनकी जन्म-सख्या की जाँच की है। और अन्त में, व्यक्तिगत स्वाधीनता के और मनुष्यता के भी नाम पर फली हुई अनीतियो को रोकने के उपायों पर विचार करते हुए पुस्तक समाप्त की है। लोकमत का नेतृत्व और नियमन करने के लिए वे सगठित रूप से काम करने की सलाह देते हैं और इस विषय में कायदे कानून की सहायता का भी वे समर्थन करते हैं। परन्तु उनका अन्तिम भरोसा तो धार्मिक वृत्ति की जागृति पर ही है। अनीति को एक तो यो ही मामूली उपायों से नहीं रोका जा सकता है, परन्तु तब तो बिल्कुल ही न रोका जा सकेगा जब कि अनीति को ही धर्मनीति का पद दिया जाने लगेगा और नीति को दुर्बलता, अध-विश्वास या अनीति ही कहा जायगा। उदाहरणार्थ—सतति-निरोध के बहुत से समर्थक ब्रह्मचर्य्य को अनावश्यक ही नहीं, बल्कि हानिकारक भी बतलाते हैं। ऐसी दशा मे निरकुश पापाचार को रोकने में केवल एक धर्म की ही सहायता कारगर होगी। यहा धर्म का सकीर्ण अर्थ न लेना चाहिए। व्यक्ति हो अथवा समाज—उस पर सच्चे धर्म का जितना गहरा प्रभाव पडता है, उतना किसी

दूसरी वस्तु का नहीं। धार्मिक जागृति का अर्थ क्रान्ति, परिवर्तन अथवा पुनर्जन्म है। ब्यूरो की सम्मति में फ्रांस जिस पथ पर चला जा रहा है, उस नीति के प्रलय से उसे कोई ऐसी ही महाशक्ति बचा सकती है—कोई दूसरी चीज नहीं।

. . .

अच्छा, अब हम लेखक तथा उनकी पुस्तक को यहीं छोड़ दें। फ्रांस और हिन्दुस्तान की हालत एक सी ही नहीं है। हमारी समस्या कुछ और ही है। गर्भ-निरोधक साधनों का यहाँ घर घर प्रचार नहीं है। शिक्षित लोगों में भी इन वस्तुओं का व्यवहार शायद ही होता हो। मेरी समझ में उनका प्रचार हिन्दुस्तान में करने का एक भी उपयुक्त कारण नहीं है। मध्यम श्रेणीवालों को क्या बहुसन्तान की भी कोई शिकायत है? कुछ व्यक्तियों के उदाहरण दिखला देने से ही यह सिद्ध न होगा कि मध्यम श्रेणी वालों में जन्म-संख्या अधिक है। जहां तक मैंने देखा है, वहां तक विधवाओं और बाल पत्नियों के लिए ही यहां इन वस्तुओं के उपयोग का समर्थन किया जाता है। इसलिए एक ओर तो हम नाजायज औलाद की पैदाइश से बचना चाहते हैं—परन्तु गुप्त व्यभिचार से नहीं—दूसरी ओर हमें नाजुक बालिका के गर्भवती हो जाने का डर है न कि उसके साथ बलात्कार किये जाने का दु:ख।

अब रहे वे रोगी, निर्बल और निर्वीर्य्य नवयुवक जो अपनी या परायी स्त्री के प्रति कामासक्त रहते हैं और इसे पाप मानते हुए भी इसके परिणामों से दूर भागना चाहते हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि असंख्य भारतीयों के इस महासागर में हृष्ट पुष्ट और वीर्यवान् स्त्री-पुरुष ऐसे विरले ही मिलेंगे जो

विषयतृप्ति भी चाहे और बच्चों का बोझ उठाने से परहेज भी। इसके समर्थकों को एक ऐसी बात के समर्थन का प्रयत्न न करना चाहिए, जिसका प्रचार यदि सार्वजनिक हो जाय तो इस देश के युवकों का सर्वनाश निश्चित है। अत्यन्त कृत्रिम शिक्षापद्धति ने जाति के युवकों की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का अपहरण कर लिया है। हम लोगों का जन्म प्रायः बचपन के ब्याहे माता-पिता से ही हुआ है। स्वास्थ्य और सफाई के नियमों की उपेक्षा करने से हमारा शरीर घुन गया है। उत्तेजक मसालों से भरी हुई हमारी गलत और अपूर्ण खुराक ने हमारी पाचन-शक्ति को नष्ट कर डाला है। हमें गर्भ-निरोधक साधनों की शिक्षा और पाशविक प्रवृत्ति की तृप्ति के निमित्त सहायता की जरूरत नहीं है। परन्तु हम को कामवासना के संयम—आजीवन ब्रह्मचर्य—की शिक्षा की निरंतर आवश्यकता है। इस बात की शिक्षा हमें उपदेश और उदाहरण दोनों के द्वारा दी जाने की जरूरत है कि यदि हमें शरीर और दिमाग को कमजोर नहीं रखना हो तो हमारे लिए ब्रह्मचर्य का पालन परमावश्यक है और यह सर्वथा शक्य भी है। हम से पुकार पुकार कर यह बात कही जाने की जरूरत है कि यदि हमारी जाति बौनों की जाति बनना नहीं चाहती है, तो हमें अपनी शक्ति का संचय करना होगा और पानी में बही जाती हुई अपनी बची-बचाई थोड़ी सी शक्ति को बढ़ाना होगा। बाल विधवाओं को यह बतलाना होगा कि गुप्त रूप से पाप मत किया करो, किन्तु साहस कर के बाहर आओ और खुल कर अपना वही अधिकार तुम भी माँगो जो नवयुवक विधुरों को पुनर्विवाह करने का प्राप्त है। हमें ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है कि जिसमें बाल

-विवाह असम्भव हो जाय। हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरल श्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता, हमारे शान से शुरू किये गये कामों का बैठ जाना और मौलिकता का अभाव—इत्यादि इन सब के मूल मे मुख्यत हमारा अत्यधिक वीर्यनाश ही है। मुझे उम्मेद है कि नवयुवक इस भ्रम मे न पडेंगे कि जब तक वे सन्तानोत्पत्ति मे बचे रहें, तब तक के भोगविलास से उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचती—उनसे निर्बलता नहीं आती। सच पूछो तो प्रजनन को रोकने के लिए कृत्रिम उपायों मे युक्त विषयभोग उनका जिम्मेवरी को समझ कर किये हुए सम्भोग की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति हर सकता है। यदि हमारा मन यह मान ले कि विषय सभोग आवश्यक, निर्दोष और पापरहित है तो फिर हम उसको निरतर तृप्त करते रहना चाहेंगे और हमारे लिए उनका दमन असभव हो जायगा। किन्तु यदि हम अपने मन को ऐसा समझा सकें कि उसमे पडना हानिकारक है, पापमय एव अनावश्यक है और उसको काबू मे रक्खा जा सकता है, तो हमको मालूम होगा कि आत्मसयम सर्वथा शक्य है।

नवीन सत्य के और मनुष्यों की स्वाधीनता के भेस मे उन्मत्त पश्चिम स्वच्छन्दता की जो मदिरा भेज रहा है, उससे हमें बचना ही होगा, परन्तु इसके विपरीत—यदि हम अपने पूर्वजों के ज्ञान को खो बैठे हो तो हम पश्चिम की उस शान्त और गभीर ध्वनि को सुने, जो कभी २ वहा के बुद्धिमान् पुरुषों के गभीर अनुभव मे हमारे पास छन छन कर आया करती है।

चार्ल्स एन्ड्रूज ने मेरे पास जनन और प्रजनन पर मि० विलियम लोफ्टस हेयर का एक अच्छा सा लेख भेजा है जो कि मार्च सन् १९२६ के "ओपनकोर्ट" नामक पत्र मे प्रकाशित

हुआ था। यह सुतर्कबद्ध वैज्ञानिक लेख है। इसमे उन्होने दिखलाया है कि सभी प्राणियों के शरीरों में दो क्रियायें बराबर चालू रहती हैं। "शरीर को बनाने के लिए आन्तरिक जनन और प्रजा-वृद्धि के लिए बाह्य प्रजनन।" इनका नाम वे क्रमश जनन और प्रजनन रखते है। "जनन (आन्तरिक जनन) व्यक्ति के जीवन का आधार है और इसलिए आवश्यक तथा मुख्य काम है। प्रजनन का काम, शरीर-कोषो के आधिक्य से होता है और इसलिए वह गौण है। इसलिए जीवन का नियम यह है कि पहले जनन के लिए शरीर-कोषो की पूरी भर्ती हो ले, तब प्रजनन हो। यदि शरीर-कोषो की कमी रही तो पहले जनन का काम होगा, प्रजनन का बन्द रहेगा। इस प्रकार हम प्रजनन की बन्दी की जड का पता पा जाते हैं तथा ब्रह्मचर्य और तपस्या के मूल तक पहुँच पाते है। आन्तरिक जनन की क्रिया के रुकने का परिणाम मृत्यु ही है—अन्य कुछ नहीं। और इस प्रकार हम मृत्यु का भी कारण जान जाते है" शरीर के प्रजनन का वर्णन करते हुए वे कहते है — "सभ्य मनुष्यो में प्रजनन की आवश्यकता से कहीं ज्यादा वीर्य नष्ट किया जाता है और इससे आन्तरिक जनन का काम रुकता है—जिसके फल-स्वरूप रोग, मृत्यु और अन्य तरह के दुख और क्लेश होते हैं।"

जिसे हिन्दू-दर्शन का जरा भी ज्ञान होगा उसे मि० हेयर के लेख का निम्न-लिखित अवतरण समझने मे कुछ भी कठिनाई न होगी —प्रजनन की क्रिया कुछ यन्त्र के काम की सी नहीं है। प्रारम्भिक काल मे कोषो के विभजन से प्रजनन का जैसा सजीव कार्य होता था, वैसा ही सजीव अब भी होता है—अर्थात्

वह बुद्धि और इच्छा पर निर्भर रहता है। यह सोचना असम्भव है कि जीवन का काम बिलकुल निर्जीव कल की भाँति होता है। हा, यह सच है कि ये मूलीभूत बाते हमारी वर्तमान जागृति से इतनी दूर जा पडी है कि वे मनुष्य की या पशु की इच्छा के अधीन नहीं मालूम होती परन्तु एक क्षण के बाद ही हमें मालूम पड जाता है कि जिस प्रकार एक पुष्ट शरीर वाले पुरुष की सभी बाह्य क्रियाओ का नियन्त्रण उसकी इच्छा-शक्ति करती है — और उसका काम ही यही है — उसी प्रकार शरीर के क्रमश होते हुए सगठन के ऊपर भी इच्छा-शक्ति का कुछ अधिकार अवश्य होना चाहिए। मनो-वैज्ञानिको ने उसका नाम असकल्प रक्खा है। यह हमारे नित्य नैमित्तिक विचारो से दूर होते हुए भी, हमारा ही अग विशेष है। यह अपने काम मे इतना जागरूक और सावधान रहता है कि हमारा चैतन्य कभी २ सुप्तावस्था मे पड जाता है, परन्तु यह सोता एक क्षण के लिए भी नही! हमारे असकल्प और अविनश्वर अग की जो प्रायः अपूर्व हानि शरीर-सुख के लिए किये गये विषय-भोग से होती है उस का अन्दाजा कौन लगा सकता है? प्रजनन का फल मृत्यु है। विषय-सभोग पुरुष के लिए प्राणघातक है, और प्रसूति के कारण स्त्री के लिए भी वैसा ही।"

इस लिए लेखक का कथन है कि "बहुत सयमी या सम्पूर्ण ब्रह्मचारियो के लिए तो पुरुषत्व, सजीवता और रोगहीनता साधारण बाते है।"

"प्रजनन अथवा साधारण आमोद के लिए ही, शरीर कोषो को जनन-पथ से हटाने से, शरीर की कमी के पूरी होने मे बाधा पहुँचती है और धीरे २ (परन्तु अन्त मे अवश्यमेव) शरीर को

हानि पहुँचती है। इन्हीं कुछ शारीरिक बातों के आधार पर मनुष्य की व्यक्तिगत सभोग-नीति निर्भर है, जिससे हमे यदि उसके दमन की नहीं तो सयम की शिक्षा तो मिलती ही है-या किसी प्रकार कुछ न कुछ सयम के मूल कारण का पता तो जरूर ही चलता है।" इसकी कल्पना सहज मे की जा सकती है कि लेखक, दवा या यन्त्रो की सहायता से गर्भ-निरोध करने के विरोधी है। उनका कहना है, "इससे आत्म-सयम का कोई हेतु रह नहीं जाता है और विवाहित स्त्री-पुरुषो के लिए जब तक बुढापे की अशक्तता या इच्छा की कमी न आ जाय, तब तक वीर्यनाश करते जाना सभव हो जाता है। इसके अतिरिक्त विवाहित जीवन के बाहर भी इसका प्रभाव अवश्य पडता है। इस से उच्छृङ्खल और अनुत्पादक व्यभिचार का द्वार खुल जाता है। यह बात आधुनिक समाजशास्त्र और राजनीति की दृष्टि से खतरे से भरी हुई है। परन्तु यहाँ इन पर पूरा विचार करने की जरूरत नहीं है। इतना कहना ही यथेष्ट होगा कि गर्भ-निरोधक साधनो से विवाह-बधन के भीतर अथवा उसके बाहर अनुचित एव अत्यधिक सम्भोग के लिए सुविधा हो जाती और शरीर-शास्त्र-सम्बन्धी मेरी उपर्युक्त दलील यदि ठीक है, तो इससे व्यष्टि और समष्टि दोनो की हानि निश्चित है।"

ब्यूरो जिस वाक्य से अपनी पुस्तक समाप्त करते है, उसे प्रत्येक हिन्दुस्तानी नवयुवक को अपने हृदय-पटल पर अङ्कित कर लेना चाहिए—"भविष्य सयमी लोगो के ही हाथ है"।

॥ इति ॥

सन्तति-निग्रह

बहुत झिझक और अनिच्छा से मैं इस विषय की चर्चा करने बैठा हूँ। हिन्दुस्तान मे मेरे आने के समय से ही पत्र-लेखक मेरे सामने कृत्रिम उपायों से सन्तति-निग्रह का सवाल उठाते रहे हैं। मैंने उन्हे व्यक्तिगत उत्तर दिये है मगर अभी तक इस सवाल की प्रकट चर्चा नही की है। अब ३५ साल हुए जब इस ओर मेरा ध्यान गया था। उस समय मै इगलैण्ड मे पढता था। उस समय वहां एक पवित्रता-वादी जो कि इसके लिए सयम को छोड और कुछ उपाय मानता ही न था और कृत्रिम उपायो के समर्थक एक डाक्टर के बीच बडी गर्म बहस चल रही थी। उसी कच्ची उम्र मे कृत्रिम उपायो की ओर कुछ दिन झुकने के बाद मैं उनका पक्का विरोधी हो गया। अब मैं देखता हूँ कि कुछ हिन्दी पत्रो मे ये उपाय इस घृणित खुले तौर पर छापे जा रहे हैं, जिनसे मनुष्य की सभ्यता की भावना को सख्त धक्का लगता है। मैंने यह भी देखा कि एक लेखक, कृत्रिम उपायो के हिमायतियो मे मेरा नाम बेधडक लेता है।

मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही है जब कि मैंने इन उपायों के पक्ष मे कुछ भी लिखा या कहा हो। मैंने दो बडे आदमियो के नामों का भी इसके पक्ष मे इस्तैमाल किये जाते देखा है। उन लोगो से पूछे विना उनका नाम छापने मे सकोच होता है।

सन्तति-निग्रह की आवश्यकता के विषय मे दो मत हो ही नहीं सकते मगर युग युग से आया हुआ इसका केवल एक ही तरीका है, और वह है आत्म-सयम या ब्रह्मचर्य। यह अचूक रामवाण दवा है, जिसकी साधना करनेवालों को लाभ ही लाभ होता है। अगर डाक्टर लोग सन्तति-निग्रह के गैरकुदरती उपाय निकालने के वदले आत्म-सयम के उपाय ढूँढें तो ससार उनका ऋणी होगा। सभोग का उद्देश्य सुख नहीं वल्कि सन्तानोत्पादन है। जब सन्तानोत्पत्ति की इच्छा न हो तब सभोग करना अपराध है, गुनाह है।

कृत्रिम साधनों का समर्थन करना मानों बुराई का हौसला वढाना है। वे स्त्री पुरुष को वेपर्वा वना देते हैं। इन उपायों को जो प्रतिष्ठापात्रता दी जाती है, उससे हमारे ऊपर लोकमत का नियत्रण जल्द से जल्द जाता रहेगा। कृत्रिम उपायो के व्यवहार से बुद्धिहीनता और मानसिक निर्वलता होगी ही। मर्ज से बुरा इलाज ही होगा। अपने कामो के फल से वचने के प्रयत्न करना पाप है और अनुचित है। जो आदमी वहुत खाना खा लेवे उसके लिए पेट का दर्द होना और उपवास करना अच्छा है। मन मना कर खाना और तव पुष्टई या और दवाएँ खाकर उसके फल से वचना अच्छा नहीं है। किसीके लिए अपने पाशविक विकारो को तृप्त करने के वाद उसके नतीजो से वचना और भी

अधिक बुरा है। प्रकृति को दया माया नही। वह अपने नियमो के जरा भी तोडने का पूरा बदला लेगी ही। नैतिक फल तो नैतिक सयम से ही मिल सकते है। दूसरे सभी सयमो से उनका उद्देश्य ही चौपट हो जाता है। कृत्रिम उपायो के समर्थन की जड मे यह दलील छिपी रहती है कि जीवन के लिए भोग आवश्यक है। इससे अधिक गलत और कुछ हो ही नहीं सकता। जो लोग सतान-सख्या का नियन्त्रण करना चाहते हैं वे पुराने ऋषियो के निकाले उचित उपायो को ही ढूँढें और सोचें कि उनको कैसे जारी किया जा सकता है। उनके आगे काम का बहुत विशाल क्षेत्र पडा है। बाल विवाहो से आबादी मे सहज ही बढती हो रही है। वर्तमान जीवन-क्रम भी बेरोक सतानोत्पादन का एक मुख्य कारण है। अगर ये कारण ढूँढ निकाले जायँ और उनको दूर किया जाय तो समाज की नैतिक उन्नति होगी। अगर अधीर हिमायती उनकी ओर से आखें मूँद लेवें और कृत्रिम उपायो का ही बाजार गर्म हो तो सिवाय नैतिक अध पतन के, नतीजा और कुछ हो ही नहीं सकता।

जो समाज अनेक कारणो से आप ही इतना उत्तेजित हो रहा है, कृत्रिम उपायो से वह और भी अधिक उत्तेजित हो जायगा। इस लिए उन लोगो के लिए जो हलके दिल से कृत्रिम उपायो का समर्थन कर रहे हैं, इस विषय का फिर से अध्ययन करने, अपने हानिकारक प्रचार को रोक रखने और विवाहित, अविवाहित सबके लिए ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने से बेहतर काम और कुछ हो ही नहीं सकता।- सन्तति—निग्रह का एक मात्र वही ऊँचा और सीधा रास्ता है।

।—+—+—।
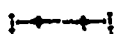
संयम या स्वच्छन्दता

'सतति-निरोध' सवधी मेरे लेख के कारण, जैसी कि उमेद की जाती थी, कुछ लोगों ने कृत्रिम साधनों के पक्ष में मुझे वडी जोरदार चिट्ठियॉ लिखी हैं। उनमें से सिर्फ तीन पत्र मैने वतौर नमूने के चुन लिये हैं। एक और पत्र भी है, पर वह वहुताश में धर्मशास्त्र से सवध रखता है, इसलिए उसे छोड देता हूँ। पहला पत्र यह है'

"मैं मानता हूँ कि ब्रह्मचर्य ही सतति-निरोध की रामवाण दवा है और इसके साधक को इससे लाभ भी होता है। लेकिन यह सयम का विषय है, सतति-निरोध का नहीं। इस पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है—एक व्यक्ति की और दूसरी समाज की। कामविकार को मारना व्यक्ति का फर्ज है, मगर इसमें वह संतति-निरोध का विचार नही करता। सन्यासी मोक्ष प्राप्त करने की कोशिश करता है, न कि सतति-निरोध की। लेकिन यह प्रश्न तो गृहस्थो का है। सवाल यह है कि एक आदमी कितने वच्चो को पाल सकता है। आप मनुष्य स्वभाव को तो जानते ही हैं। प्रजोत्पत्ति की आवश्यकता पूरी हो जाने वाद सभोग-सुख को छोडने को कितने आदमी तैयार होंग? स्मृतिकारों की तरह आप भी मर्यादा में रह कर सभोगेच्छा पूरी करने की इजाजत तो देंगे ही। लेकिन इससे सतति-निरोध या जन्म-मर्यादा का सवाल हल न होगा क्योकि योग्य प्रजा, अयोग्य प्रजा से अधिक तेजी से बढती है।

"संतानोत्पत्ति की इच्छा से कितने मनुष्य संभोग करते हैं? आप कहते हैं कि संतानोत्पत्ति की इच्छा के विना, सभोग करना पाप है। यह तो आप जैसे सन्यासियों के लिए ही ठीक है। आप यह कहते हैं कि कृत्रिम साधनो का प्रयोग बुराई को वढाता है। उससे स्त्रीपुरुष उच्छृङ्खल हो जाते हैं। यदि यह सच हो तो आप वडा भारी इल्जाम लगाते हैं। क्या कभी लोकमत के जरिये भी लोगों के विषय-भोग मर्यादित किये जा सके हैं? लोग कहते हैं कि ईश्वर की इच्छा से सतान होती है, जिसने दात दिये है, वह दूध भी देगा ही। और अधिक सतति होनी, मर्दानगी का चिह्न समझी जाती है। क्या निश्चय ही कृत्रिम साधनो के प्रयोग से शरीर और मन दुर्वल हो जाते हैं? लेकिन आप तो किसी प्रकार भी उसका उपयोग करने देना नहीं चाहते। क्योंकि अपने किये के फल से मुँह चुराना वुरा है, अनीति है। इसमें आप यह मान लेते हैं कि ऐसी भूख को जरा भी बुझाना अनीति है। यदि सयम का कारण डर हो तो उससे नैतिक परिणाम अच्छा न होगा। माता पिता के पाप की भागी भला सतति किस नियम से हो? वनावटी दांत, आंख इत्यादि के इस्तेमाल को कोई कुदरत के खिलाफ नहीं समझता। वही कुदरत के खिलाफ है, जिससे हमारी भलाई नहीं होती। मैं यह नहीं मानता कि स्वभाव से ही मनुष्य वुरा होता है। और इनके प्रचार से वह और भी वुरा वन जायगा। आज भी पाप कुछ कम नहीं हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे अछूता नहीं है। वुद्धिमानी तो इसमें है कि हम इस नयी शक्ति को कावू में लावें न कि इससे भाग चलें। कुछ अच्छे से अच्छे कार्यकर्त्ता इनका प्रचार करना चाहते हैं, किन्तु उच्छृङ्खलता के प्रचार के

लिए नहीं, वल्कि लोगों को आत्मसयम के अभ्यास में मदद पहुँचाने के लिए। हमें स्त्रियों को भूल नहीं जाना चाहिए। उनकी आवश्यकताओं पर हमने बहुत दिनों तक ध्यान नहीं दिया है। वे प्रजोत्पत्ति के लिए बतौर खेत या क्षेत्र के अपने शरीर का इस्तैमाल करने की इजाजत पुरुष को नहीं देतीं। कुछ रोग भी ऐसे हैं, जिन्हें मज्जा ततुओं की निर्वलता की जोखिम उठा कर भी दूर करने चाहिए।"

मैं यह बात पहले ही साफ किये देता हूँ कि वह लेख मैंने न तो सन्यासियों के लिए और न सन्यासी की हैसियत से ही लिखा था। प्रचलित अर्थ के अनुसार मैं सन्यासी होने का दावा भी नहीं करता। मैंने जो कुछ लिखा है, आज तक के अपने निजी अखडित अभ्यास के बल पर लिखा है, जिसमें २४ साल के वीच कहीं कहीं नियम-भग हुआ है। यही नहीं, मेरे उन मित्रों का अनुभव भी इसमें शामिल है, जिन्होंने इस प्रयोग में इतने वर्षों तक मेरा साथ दिया है और उनके अनुभवों पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। प्रयोग में क्या युवक और क्या बूढे, सभी प्रकार के स्त्री पुरुष सम्मिलित हैं। मेरा दावा है कि यह प्रयोग कुछ अश तक तो वैज्ञानिक दृष्टि से भी ठीक था। अगर्चे कि उसका आधार बिलकुल नैतिक था, तो भी उसका आरभ सतति-निरोध की अभिलाषा से हुआ था। इस प्रयोग के लिए खुद मेरा ही एक विलक्षण उदाहरण था। इसके बाद विचार करने पर उससे भारी भारी नैतिक परिणाम निकाले—पर निकले वे बिलकुल स्वाभाविक क्रम से। मैं यह दावा करता हूँ कि यदि विचार और विवेक से काम लिया जाय तो बिना ज्यादे कठिनाई

के संयम का पालन बिलकुल संभव है। और यह मुझ अकेले का ही दावा नहीं बल्कि जर्मन और दूसरे प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्रियों का भी है। उनका तो कहना है कि जल तथा मिट्टी के प्रयोग से स्नायुएँ संकुचित होती हैं और अनुत्तेजक तथा खास कर फलाहार से स्नायुओं का वेग शमन होता है, एवं विषय-विकार को आदमी आसानी से जीत सकता है, पर साथ ही उससे स्नायुएँ पुष्ट और बलवान् भी होती हैं। राजयोगियों का कहना है कि सिर्फ प्राणायाम ही ठीक ठीक करने से भी यही लाभ होता है। न तो पूर्वीय, न पश्चिमीय प्राचीन विधियाँ केवल संन्यासियों के लिए ही हैं, बल्कि इसके उलटे खास कर गृहस्थों के लिए हैं। यदि यह कहा जाय कि बहुत अधिक आबादी के कारण ही कृत्रिम उपायों के जरिये, संतति-निरोध की जरूरत है तो मुझे इसमें पूरी शंका है। यह बात अब तक साबित ही नहीं की गयी है। मेरी राय में तो यदि खेती के बँटवारे का समुचित प्रबंध कर दिया जाय, खेती सुधारी जाय, और एक सहायक धंधे की तजवीज कर दी जाय तो हमारा यह देश अपनी मौजूदा आबादी से दुगने लोगों को अभी पाल सकता है। मैंने तो इससे बिलकुल अलग, यहाँकी राजनीतिक अवस्था की दृष्टि से ही संततिनिरोध चाहनेवालों का साथ दिया है।

मैं यह बात जरूर कहता हूँ कि संतानोत्पत्ति की अभिलाषा पूरी हो जाने बाद मनुष्यों को विषय-भोग से दूर होना होगा। आत्म-संयम के उपाय लोकप्रिय और बाअसर बनाये जा सकते हैं। शिक्षित लोगों ने कभी उसकी आजमायश ही नहीं की। संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा की कृपा से लोगों को अभी उसका भार

मालूम ही नही पडा है। जिन्होंने मालूम किया है, उन्होने, उसमें के नैतिक सवालों पर विचार ही नहीं किया है। ब्रह्मचर्य पर कुछ इधर उधर के व्याख्यानो के सिवाय, सतानोत्पत्ति को मर्यादित करने के उद्देश्य से आत्म-सयम के प्रचार का कोई व्यवस्थित प्रयत्न नहीं किया गया है। वल्कि उसके उलटे यही वहम अव भी फैला हुआ है कि वडा परिवार होना कुछ शुभ लक्षण है और इसलिए वाञ्छनीय है। धर्मोपदेशक आम तौर पर यह उपदेश नहीं देते कि मौका आने पर सन्तानोत्पत्ति को रोकना भी वैसा ही धर्म हो सकता है जैसा कि सन्तान की वृद्धि करनी।

मुझे भय है कि कृत्रिम साधनों के हिमायती यह वात पक्की मान लेते है कि विषय-विकार की तृप्ति जीवन के लिए आवश्यक है और इसलिए अपने आप ही इष्ट वस्तु है। अवला जाति के लिए जो फिक्र दिखलायी गयी है वह तो अत्यन्त करुणाजनक है। मेरी राय में तो कृत्रिम साधनो के जरिये सतति-निरोध के समर्थन मे नारीजाति को सामने ला रखना, उनका अपमान करना है। एक तो यो ही पुरुषजाति ने अपनी विषय-तृप्ति के लिए उन्हें काफी नीचे गिरा डाला है और अव कृत्रिम साधनो के हिमायतियो के उद्देश्य चाहे कितने ही भले क्यो न हो मगर वे उन्हें और नीचे गिराये विना नही रहेगे। हा, मैं जानता हूँ कि आज कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो खुद ही इन साधनो की हिमायत करती है। पर मुझे इस वात मे कोई शक नही है कि स्त्रियो की एक वहुत वडी तायदाद इन साधनो को अपने गौरव के खिलाफ समझ कर उनका निरादर करेगी। यदि पुरुष सचमुच स्त्री जाति का हित चाहते हैं तो

उन्हें चाहिए कि वे खुद ही अपने मन को वश में रक्खें। स्त्रियाँ पुरुषों को नहीं ललचाती। सच पूछिए तो पुरुष ही खुद ज्यादती करता है और इसलिए वही सच्चा अपराधी और ललचानेवाला है।

मैं कृत्रिम साधनों के समर्थकों से आग्रह करता हूँ कि वे इसके नतीजों पर गौर करें। इन साधनों के ज्यादह उपयोग का फल होगा विवाह-बंधन का नाश और मनमाने प्रेम संबंध की बढती। यदि मनुष्य के लिए विषय-विकार की तृप्ति आवश्यक ही हो जाय तो फिर फर्ज कीजिए कि वह बहुत दिनों तक अपने घर से दूर है या बहुत समय तक लडाई में लगा है, या वह विधुर है, या उसकी पत्नी ऐसी बीमार है कि कृत्रिम साधनो का उपयोग करते हुए भी उसकी विषयतृप्ति के अयोग्य है तो ऐसी अवस्था में उसे क्या करना होगा?

लेकिन दूसरे लेखक कहते हैं.

"संतति-निरोध संबंधी अपने लेख में आप यह कहते हैं कि कृत्रिम साधन बिलकुल ही हानिकारक है। लेकिन आप उसी बात को सिद्ध मान लेते हैं जिसे कि साबित करना है। संतति-निरोध सम्मेलन (लंदन, १९२२) में ३ मतो के विरुद्ध १६४ मतों से यह स्वीकार कर लिया गया था कि गर्भ को न ठहरने देने के उपाय स्वास्थ्यकर हैं, नीति, न्याय और शरीर-विज्ञान की दृष्टि से गर्भपात इससे बिलकुल ही भिन्न है और यह बात किसी प्रमाण से साबित नहीं हो पायी है कि ऐसे सर्व्वोत्तम उपाय स्वास्थ्य के लिए हानिकारक या वन्ध्यत्व के उत्पादक हैं। मेरी समझ में ऐसी संस्था की राय कलम के एक ही झटके से रद्द नही की जा सकती। आप लिखते हैं कि बाह्य साधनों का उपयोग

करने से तो शरीर और मन निर्बल हो जाने चाहिए। क्यों हो जाने चाहिए? मैं कहता हूँ कि उचित उपायों के इस्तैमाल से निर्बलता नहीं आती। हां! हानिकारक उपायों से जरूर आती है और इसी लिए पुख्ता उम्र के लोगों को इसके योग्य उचित उपाय सिखाना आवश्यक है। सयम के लिए आपके उपाय भी तो कृत्रिम साधन ही होंगे। आप कहते है, सभोग करना आनन्द के लिए नहीं बनाया गया है! किसने नहीं बनाया है? ईश्वर ने? तो फिर उसने सभोग की इच्छा ही किस लिए पैदा की? कुदरत के कानून में कार्यों का फल अनिवार्य है। लेकिन आपकी यह दलील, जब तक आप यह साबित न करें कि कृत्रिम साधन हानिकारक हैं, कौडी काम की नहीं है। कार्यों के अच्छे बुरे होने की पहचान उनके परिणाम से होती है। ब्रह्मचर्य के लाभ बहुत बढा कर कहे गये हैं। बहुत से डाक्टर २२ साल की या ऐसी ही कुछ उम्र के बाद सभोग के जरिये वीर्य-पात न करने को हानिकारक मानते हैं। यह आपके धार्मिक आग्रह का परिणाम है कि आप प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना सभोग को पाप मानते हैं। इससे सबपर आप पाप का आरोपण करते है। शरीर विज्ञान यह नहीं कहता। ऐसे आग्रहों के सामने विज्ञान को कम महत्व देने के दिन अब बीत गये हैं।"

लेखक शायद अपना समाधान नहीं चाहते। मैंने तो यह दिखलाने लिए काफी उदाहरण दे दिये हैं कि यदि हम विवाह-बधन की पवित्रता को कायम रखना चाहते हैं तो भोग नहीं बल्कि आत्म-सयम ही जीवन का धर्म समझा जाना चाहिए। जो बात सिद्ध करनी है उसी को मैने सिद्ध नहीं मान लिया है।

क्योंकि मै यह कहता हूँ कि कृत्रिम साधन चाहे कितने ही उचित क्यों न हो, पर हैं वे हानिकारक ही। वे खुद चाहे हानिकारक न भी हो पर वे इस तरह हानिकर जरूर हैं कि उनके द्वारा विषय-विकार की भूख उद्दीप्त होती है और ज्यों ज्यो उनका सेवन किया जाता है त्यो त्यो वढती जाती है। जिसके मन को यह मानने की आदत पड गयी हो कि विषय-भोग न सिर्फ उचित ही वल्कि करने लायक चीजे भी हैं, वह भोग में ही सदा रत रहेगा और अन्त को इतना निर्वल हो जायगा कि उसकी तमाम सकल्प शक्ति नष्ट हो जायगी। मैं जोरो से कहता हूँ कि हर वार के विषय-भोग से मनुष्य की वह अनमोल शक्ति कम होती है जो क्या पुरुष और क्या स्त्री, दोनो के शरीर, मन और आत्मा को सशक्त रखने के लिए परमावश्यक है। इससे पहले मैंने इस विवाद से आत्मा शव्द को जान वूझ कर अलग रक्खा था, क्योंकि पत्र-लेखक उसके अस्तित्व का खयाल ही करते हुए नहीं दिखायी देते और इस वहस में मुझे सिर्फ उनकी दलीलो का ही जवाव देना है। भारतवर्ष में एक तो यों ही विवाहित लोगों की सख्या वहुत वडी है। फिर यह मुल्क नि सत्व भी काफी हो चुका है। यदि और किसी कारण से नहीं तो उसकी गयी हुई जीवनी शक्ति को वापिस लाने के लिए ही उसे कृत्रिम साधनों के द्वारा विषय-भोग की नहीं, वल्कि पूर्ण सयम की ही शिक्षा की जरूरत है। हमारे अखवारो को देखिए। अनीतिमूलक दवाइयो के विज्ञापन उनकी सूरत विगाड रहे है! कृत्रिम साधनो के हिमायती उन्हें अपने लिए चेतावनी समझें। लज्जा या झूठे सकोच का कोई भाव मुझे इसकी चर्चा से नही रोक रहा है, वल्कि यह ज्ञान कि इस देश

के जीवनी शक्ति से हीन और निर्बल युवक विषय-भोग के पक्ष में पेश की गयी सदोष युक्तियों के शिकार कितनी आसानी से हो जाते हैं, मुझसे सयम करा रहा है ।

अब शायद इस बात की जरूरत नहीं रह गयी है कि मैं दूसरे पत्र-लेखक के उपस्थित किये डाक्टरी प्रमाणपत्रों का जवाब दूँ। मेरे पक्ष से उनका कोई सबध नहीं है। मैं इस बात की न तो पुष्टि ही करता हूँ और न इससे इनकार ही करता हूँ कि उचित कृत्रिम साधनो से अवयवो को हानि पहुँचती है या वध्यापन होता है । डाक्टर लोग चाहे कितनी ही सुन्दरता से दलीलो की व्यूह-रचना क्यों न करे, मगर उनकी बदौलत उन सैकडो नौजवानो के जीवन का सत्यानाश असिद्ध नहीं हो सकता, जो पराई औरतो या खुद अपनी ही पत्नियो के साथ अति भोग-विलास के कारण हुआ है और जिसे मैंने खुद देखा है ।

पत्र-लेखक की दी हुई कृत्रिम दात की उपमा फबती हुई नहीं जान पडती । हा, बनावटी दात जरूर ही नकली और अस्वाभाविक होते है, पर उनसे कम से कम एक आवश्यकता की पूर्ति तो हो सकती है । पर इसके खिलाफ विषय-भोग के लिए कृत्रिम साधनो का प्रयोग उस भोजन की तरह है जो भूख बुझाने के लिए नहीं बल्कि जीभ की तृप्ति के लिए किया जाता है । केवल जीभ के आनन्द के लिए भोजन करना उसी तरह पाप है जिस तरह कि विषय-भोग के लिए भोग-विलास करना ।

इस अखीरी पत्र मे एक नयी ही बात मिलती है

"यह सवाल दुनिया के सभी राज्यों को चिन्तित कर रहा है । बेशक, आप यह तो जानते ही होंगे कि अमेरिका

इसके प्रचार के खिलाफ है। आपने यह भी सुना होगा कि जापान ने इसके प्रचार की बारे आम इजाजत दे दी है। इसका कारण सबको विदित है। उन्हें प्रजोत्पत्ति रोकनी थी। इसके लिए मनुष्य-स्वभाव का भी उन्हे विचार करना था। आपका नुस्खा आदर्श हो सकता है, लेकिन क्या वह व्यावहारिक भी है? थोडे मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं लेकिन क्या जनता मे इसके सबध मे की गयी किसी हलचल से कुछ मतलब हल हो सकता है? भारतवर्ष में तो इसके लिए सामुदायिक हलचल की आवश्यकता है।"

मुझे अमेरिका और जापान की इन बातो की खबर नही थी। पता नही, जापान क्यो कृत्रिम साधनो का पक्ष ले रहा है। यदि लेखक की बात सही है और यदि सचमुच जापान मे कृत्रिम साधन आम चीज हो रहे हैं तो मैं साहस के साथ कहता हूँ कि यह सुन्दर राष्ट्र अपने नैतिक सत्यानाश की ओर दौडा जा रहा है।

हो सकता है कि मेरा ख्याल बिल्कुल गलत हो। सभव है कि मेरे निर्णय गलत सामग्री के आधार पर निकले हो। लेकिन कृत्रिम साधनों के हामियो को धीरज रखने की जरूरत है। आधुनिक उदाहरणो के अलावा उनके पक्ष में कोई सामग्री नहीं है। निश्चय ही एक ऐसे साधन के विपय मे जो कि यो देखने में ही मनुष्य-जाति के नैतिक भावो को घृणास्पद मालूम पडती है, किसी अश तक निश्चय के साथ कुछ भविष्य कथन करना बडी उतावली का काम होगा। नौजवानी के साथ खिलवाड करना तो बहुत आसान है, परन्तु ऐसे दुष्परिणामों को मिटाना टेढी खीर होगा।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य और उसके पालन के साधनों के विषय में मेरे पास पत्रो की वाढ सी आ रही है। दूसरे अवसरों पर मैं जो कुछ कह या लिख चुका हूँ उसे ही यहा दूसरे शब्दों मे कहने की कोशिश करूँगा। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल शारीरिक संयम ही नही है वल्कि इसका अर्थ है सभी इन्द्रियो पर पूर्ण अधिकार और मन वचन और शरीर से भी कामभाव से मुक्ति। इस स्वरूप मे आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-प्राप्ति का यही सुगम और सच्चा रास्ता है।

आदर्श ब्रह्मचारी को कामेच्छा या सतान की इच्छा से कभी जूझना नहीं पडता, यह कभी उसे होती ही नही । उसके लिए सारा ससार एक विशाल परिवार होगा, मनुष्य जाति के कष्ट दूर करने मे ही वह अपने को कृतार्थ मानेगा, और सतानोत्पत्ति की इच्छा उसके लिए निहायत मामूली बात मालूम होगी । जिसे मनुष्य जाति के दु ख का पूरा पूरा भान हो गया है, उसे कभी कामेच्छा होगी ही नहीं । उसे अपने भीतर के शक्ति कोष का पता अपने आप ही लग जायगा और उसे शुद्ध रखने की वह बराबर कोशिश करता रहेगा। उसकी नम्र शक्ति पर ससार श्रद्धा रक्खेगा । और गद्दीनशीन बादशाहों से भी उसका प्रभाव बढा चढा होगा ।

मगर मुझे कहा जाता है कि 'यह असंभव आदर्श है, आप तो मर्द और औरत के बीच स्वाभाविक आकर्षण का खयाल ही नही करते।' यहां जिस कामुक खिंचाव का इशारा है, मैं उसे स्वाभाविक मानने से ही इनकार करता हूं । अगर वह स्वाभाविक हो तो प्रलय बात की बात में आया ही चाहता है। मर्द और औरत के बीच स्वाभाविक सबध वह है जो भाई और बहिन में, मा और बेटे मे, बाप और बेटी में होता है । उसी स्वाभाविक आकर्षण पर ससार अडा हुआ है । अगर मैं सारी नारीजाति को मा, बहिन या बेटी न मानूं, तो अपना कार्य करना तो दूर, मैं तो जी ही न सकूंगा । अगर काम-भरी आंखो से मैं उनकी ओर देखूं तो नरक का सबसे सीधा और सच्चा रास्ता और क्या होगा ?

सन्तानोत्पत्ति स्वाभाविक क्रिया है जरूर, मगर निश्चित मर्यादा के भीतर । उस मर्यादा को तोडने से नारी जाति खतरे

में पडती है, जाति का पुरुषत्व नष्ट होता है, रोग फैलते हैं, पाप का बोलबाला होता है और ससार पाप-भूमि बनता है। कामनाओ के पजे में पडा मनुष्य, बेलगर की नाव के समान होता है। अगर ऐसा आदमी समाज का नेता हो, अपने लेखों से वह समाज को व्याप्त कर देवे, और लोग उसके पीछे चलने लगें तो फिर समाज रहेगा कहां? और तौभी आज वही हो रहा है। मान लो कि रौशनी के इर्दगिर्द चक्कर काटनेवाला पतिंगा अपने क्षणिक आनन्द का वर्णन करे और उसे आदर्श मान कर हम उसकी नकल करे तो हमारा कहां ठिकाना लगेगा? नहीं, अपनी सारी शक्ति लगा कर मुझे कहना ही पडेगा कि पति और पत्नी के बीच भी काम का आकर्षण अस्वाभाविक, गैर-कुदरती है। विवाह का उद्देश्य दम्पति के हृदयो से विकारो को दूर कर के उन्हे ईश्वर के निकट ले जाना है। कामनारहित प्रेम, पति पत्नी के बीच असभव नहीं है। मनुष्य पशु नहीं है। पशु-योनि में अनगिनत जन्म लेने बाद वह उस पद पर आया है। सिर ऊँचा कर के चलने को उसका जन्म हुआ है, लेट कर या पेट के बल रेंगने को नहीं। पुरुषत्व से पाशविकता उतनी ही दूर है जितनी आत्मा से शरीर।

उपसहार में मैं इसकी प्राप्ति के उपायो को सक्षेप में दूँगा।

इसकी आवश्यकता को समझना पहला काम है।

दूसरा है इन्द्रियो पर क्रमश अधिकार करना। ब्रह्मचारी को जीभ पर काबू करना ही होगा। वह जीवन-धारण के लिए ही खा सकेगा, मौज के लिए नही। उसे केवल पवित्र वस्तुएँ ही देखनी होंगी और अपवित्र चीजों की ओर से आखें मूँद लेनी होंगी। इस प्रकार इधर उधर आखें न नचाते हुए निगाह

नीची कर के रास्ता चलना शिष्टता का चिह्न है। उसी प्रकार ब्रह्मचारी कोई अश्लील या बुरी बात नहीं सुनेगा, कोई बहुत जबर्दस्त या उत्तेजक गध नही सूघेगा। पवित्र मिट्टी का गध बनावटी इतरो और सुगधियो से कही अच्छा होता है। ब्रह्मचर्य-पालन के इच्छुक को चाहिए कि वह जब तक जगता रहे तब तक अपने हाथ पांवो से कोई न कोई अच्छा काम लेता ही रहे। वह कभी कभी उपवास भी कर लिया करे।

तीसरा काम है शुद्ध साथियों, निष्कलक मित्रों और पवित्र पुस्तको को रखना।

अखीरी, मगर किसी से कम महत्ववाला नहीं, काम है प्रार्थना। रोज नियमित रूप से पूरा दिल लगा कर ब्रह्मचारी 'रामनाम' का जप किया करे और ईश्वर की सहायता माँगे।

साधारण मर्द या औरत के लिए इनमें कोई बात मुश्किल नहीं है। ये तो हद दर्जे की सहल बाते है। मगर उनकी सादगी से ही लोग घबराते हैं। जहां चाह है वहां राह भी सहज ही मिल जायगी। लोगो को इसकी चाह नही होती और इसी लिए वे व्यर्थ की ठोकरें खाते हैं। इस बात से कि ससार का आधार कमोबेश इसीपर है कि लोग ब्रह्मचर्य या सयम का पालन करते है, यही सिद्ध होता है कि यह आवश्यक और सभव है।

सत्य बनाम ब्रह्मचर्य

एक मित्र महादेव देशाई को लिखते है

"आपको याद होगा कि 'नवजीवन' मे गांधी जी ने ब्रह्मचर्य पर एक लेख मे, जिसका कि आपने य इ में अनुवाद किया था, कबूल किया था कि उन्हें अब भी कभी कभी स्वप्न-दोष हो जाया करते हैं। उसे पढने के साथ ही मुझे लगा कि ऐसे लेखों से कोई लाभ नहीं हो सकता। पीछे से मुझे मालूम हुआ कि मेरा यह भय निर्मूल नहीं था।

"विलायत के प्रवास में प्रलोभनो के रहते हुए भी मैंने और मेरे मित्रों ने अपना चरित्र निष्कलक रक्खा। स्त्री, मदिरा और मास हम बिलकुल बचे रहे। मगर गाधी जी का लेख पढ कर एक मित्र ने कहा, 'गाधी जी के भीष्म प्रयत्नो के बाद भी अगर उनकी यह हालत है तो हम किस खेत की मूली हैं? ब्रह्मचर्य-पालन का प्रयत्न बेकार है। गाधी जी की स्वीकारोक्ति ने मेरी दृष्टि ही बिलकुल बदल दी। आजसे मुझे तुम गया बीता समझ लो।' कुछ झिझक के साथ मैंने उससे बहस करने की कोशिश की। जो दलीलें आप या गाधी जी पेश करते वैसी ही मैंने कहीं, 'अगर यह रास्ता

गांधी जी ऐसों के लिए भी इतना कठिन है तो हमारे तुम्हारे लिए जरूर ही और भी अधिक मुश्किल होना चाहिए। इस लिए हमे दुगुनी कोशिश करनी चाहिए।' मगर बेकार ही। आज तक जिम भाई का चरित्र निष्कलङ्क रहा था, उसमें यों धब्बे लग गये। अगर इस पतन के लिए कोई गाधी जी को जिम्मेवार कहे तो वे या आप क्या कहेंगे ?

"जब तक मेरे पास केवल एक ही उदाहरण था, मैंने आपको नहीं लिखा। शायद आप मुझे यह कह कर टरका देते कि यह अपवाद है। मगर इसके और कई उदाहरण मिले और मेरी आशंका और भी सही साबित हुई।

"मै जानता हूँ कि कुछ ऐसी चीजें है जो गांधी जी के लिए करनी बहुत ही सहज हो मगर मेरे लिए असभव हो। परन्तु ईश्वर की कृपा से मैं यह भी कह सकता हूँ कि कुछ चीजें जो मेरे लिए सभव होवें, उनके लिए भी असभव हो सकती हैं। इसी ज्ञान या अहम्भाव ने मुझे अब तक गिरने से बचाया है, अगर्चे कि ऊपर लिखी गांधी जी की स्वीकारोक्ति ने मेरे मन से मेरे बेखतरेपने का भाव बिलकुल डिगा दिया है।

"क्या आप गाधी जी का ध्यान इस ओर दिलावेगे और खास कर तब जब कि वे अपनी आत्मकथा लिख रहे हैं। सत्य और नगे सत्य को कह देना बेशक बहादुरी का काम है मगर इससे 'नवजीवन' और 'यग इण्डिया' के पाठको मे गलत फहमी फैलने का डर है। मुझे भय है कि एक के लिए जो अमृत हो, वही दूसरे के लिए कही जहर न हो जाय।"

इस शिकायत से मुझे कुछ ताज्जुब नही हुआ। जब कि असहयोग अपने अरुज पर था, उस समय मैने अपनी एक भूल

स्वीकार की थी। इस पर एक मित्र ने निर्दोष भाव से लिखा 'अगर यह भूल भी थी तो आपको उसे भूल न मान लेना था। लोगो मे यह विश्वास वढाना चाहिए कि कम से कम एक आदमी तो ऐसा है जो चूकता नही। आपको लोग ऐसा ही समझते थे। आपकी स्वीकारोक्ति से उनका दिल वैठ जायगा।' इस पर मुझे हॅसी आयी और मैं उदास भी हो गया। पत्र-लेखक की सादगी पर मुझे हॅसी आयी। मगर यह खयाल ही मेरे लिए असह्य था कि लोगो को यकीन दिलाया जाय कि एक पतनशील, चूकनेवाला आदमी, अपतनशील या अचूक है।

किसी आदमी के सच्चे स्वरुप के ज्ञान से लोगो को लाभ हमेशे हो सकता है, हानि कभी नहीं। मैं दृढतापूर्वक विश्वास करता हूॅ कि मेरे तुरत ही अपनी भूले स्वीकार कर लेने से उनका लाभ ही लाभ हुआ है। खैर, किसी हालत मे मेरे लिए तो यह न्यामत ही सावित हुआ है।

वुरे स्वप्न होना स्वीकार करना भी मैं वैसी ही वात मानता हूॅ। अगर सम्पूर्ण ब्रह्मचारी हुए विना मैं इसका दावा करूं तो इससे ससार की मैं वहुत वडी हानि करूॅगा। क्योकि इससे ब्रह्मचर्य मे दाग लगेगा और सत्य का प्रकाश धुॅधला पडेगा। झूठे वहानो के जरिये ब्रह्मचर्य का मूल्य कम करने का साहस मै क्योकर कर सकता हूॅ? आज मै देखता हूॅ कि ब्रह्मचर्य पालन के जो तरीके मैं वतलाता हूॅ वे पूरे नहीं पडते, सभी जगह उनका एकसा असर नहीं होता क्योकि मै पूर्ण ब्रह्मचारी नही हूॅ। जव कि ब्रह्मचर्य का सच्चा रास्ता मैं दिखा न सकूॅ तव संसार के लिए यह विश्वास करना कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूॅ, वडी भयकर बात होगी।

केवल इतना ही जानना दुनिया के लिए यथेष्ट क्यों न हो कि मैं सच्चा खोजी हूँ, मैं पूरा जाग्रत हूँ, सतत प्रयत्नशील हूँ और विघ्न बाधाओ से डरता नही? औरो को उत्साहित करने के लिए इतना ही ज्ञान काफी क्यों न होवे? झूठे प्रमाणो पर से नतीजे निकालना भूल है। जो बाते प्राप्त की जा चुकी है, उन्हींपर से नतीजे निकालना सबसे अधिक ठीक हैं। ऐसी दलीलें क्यो करो कि मेरे ऐसा आदमी जब बुरे विचारो से न बच सका तो दूसरों के लिए कोई उमेद ही नही है? ऐसे क्यों न सोचो कि वह गाधी, जो किसी जमाने मे काम के अभिभूत था, आज अगर अपनी पत्नी के साथ भाई या मित्र के समान रह सकता है, और ससार की सर्व श्रेष्ठ सुन्दरियो को भी बहिन या बेटी के रूप में देख सकता है तो नीच से नीच और पतित मनुष्य के लिए भी आशा है? अगर ईश्वर ने इतने विकारो से भरे हुए मनुष्य पर अपनी दया दर्शायी तो निश्चय ही वह दूसरो पर भी दया दिखावेगा ही।

पत्र-लेखक के जो मित्र मेरी न्यूनताओ को जान कर के पीछे हट पडे, वे कभी आगे बढे ही नही थे। यह तो झूठी साधुता कही जायगी जो पहले ही धक्के मे चूर हो गयी। सत्य, ब्रह्मचर्य और दूसरे ऐसे सनातन सत्य मेरे ऐसे अपूर्ण मनुष्यों पर निर्भर नही रहते। उनका अडग आधार रहता है उन बहुतों की तपश्चर्या पर जिन्होंने उनके लिए प्रयत्न किया और उनका संपूर्ण पालन किया। उन सपूर्ण जीवो के साथ बराबरी मे खडे होने की योग्यता जिस घडी मुझमें आ जायगी, आज की अपेक्षा, मेरी भाषा में कही अधिक निश्चय और शक्ति होगी। दर असल स्वस्थ पुरुष उसीको कहेंगे जिसके विचार इधर उधर दौडे नहीं फिरते,

जिसके मनमें बुरे विचार नहीं उठते, जिसकी नींद में स्वप्नों से व्याघात न पडता हो और जो सोते हुए भी सपूर्ण जाग्रत हो। उसे कुनैन लेने की जरूरत नहीं। उसके न विगडनेवाले खून में ही सभी विकारो को दवा लेने की आन्तरिक शक्ति होगी। शरीर, मन और आत्मा की उसी स्वस्थ अवस्था को मैं पाने की कोशिश कर रहा हूँ। इसमें हार या असफलता नहीं हो सकती। पत्र-लेखक, उनके सशयालु मित्रों और दूसरो को मैं अपने साथ चलने को निमन्त्रण देता हूँ और चाहता हूँ कि पत्र-लेखक के ही समान वे मुझसे अधिक तेजी से आगे वढ चलें। जो मेरे पीछे पडे हैं, मेरे उदाहरण से उन्हें भरोसा पैदा हो। जो कुछ मैंने पाया है, वह सव मुझ में लाख कमजोरियो के होते हुए भी, कामुकता के होते हुए भी, मैंने पाया है—और उसका कारण है मेरा सतत प्रयत्न और ईश्वर-कृपा में अनन्त विश्वास।

इस लिए किसी को निराश होने की जरूरत नही। मेरा महात्मापन कौडी काम का नही है। यह तो मेरे वाहरी कामो, मेरे राजनीतिक कामो के कारण है और ये काम मेरे सबसे छोटे काम हैं और इस लिए यह दो दिनों मे उड जायगा। सचमुच मे मूल्यवान् वस्तु तो मेरा सत्य, अहिंसा, और ब्रह्मचर्य-पालन का हठ ही है, और यही मेरा सच्चा अग है। मेरा यह स्थायी अश चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो मगर नफरत की निगाह से देखने लायक नही है। यही मेरा सर्वस्व है। मैं तो असफलताओ और भूलो के ज्ञान को भी प्यार करता हूँ, जो उन्नति-पथ की सीढियाँ है।

वीर्य रक्षा

कितनी नाजुक समस्याओं पर केवल खानगी में ही बात-चीत करने की इच्छा रहते हुए भी उनपर प्रकट रूप में विचार करने के लिए, पाठकगण मुझे क्षमा करें। परन्तु जिस साहित्य का मुझे लाचार अध्ययन करना पड़ा है और महाशय ब्यूरो की पुस्तक की आलोचना पर मेरे पास जो अनेक पत्र आये हैं, उनके कारण समाज के लिए इस परम महत्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकट चर्चा करनी आवश्यक हो गयी है। एक मलाबारी भाई लिखते हैं :

"आप महाशय ब्यूरो की पुस्तक की अपनी समालोचना में लिखते हैं कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता कि

ब्रह्मचर्य्य-पालन वा दीर्घकाल के सयम से किसी को कुछ हानि पहुँची हो। खैर मुझे अपने लिए तो तीन सप्ताह से अधिक दिनो तक मंयम रखना हानिकारक ही मालूम होता है। इतने ममय के वाद, प्राय मेरे शरीर मे भारीपन का तथा चित्त और अग मे वेचैनी का अनुभव होने लगता है जिससे मन भी चिडचिडा सा हो जाता है। आराम तभी मिलता है जव मभोग द्वारा या प्रकृति की कृपा होने से यों ही कुछ वीर्यपात हो लेता है। दूसरे दिन सुवह शरीर वा मन की कमजोरी का अनुभव करने के वदले मैं शान्त और हलका हो जाता हूँ और अपने काम में अधिक उत्साह से लगता हूँ।

"मेरे एक मित्र को तो सयम हानिकारक ही सिद्ध हुआ। उनकी उम्र कोई ३२ साल की होगी। वे वडे ही कट्टर शाकाहारी और धर्मिष्ठ पुरुप है। इनके शरीर या मन का एक भी दुर्व्यसन नहीं है। किन्तु तोभी, दो साल पहले तक उन्हें स्वप्न-दोष मे वहुत वीर्य्य-पात हो जाया करता था जिसके वाद उन्हें वहुत कमजोरी और उत्साह-हीनता होती थी। उसी समय उन्होने विवाह किया। पेड़ू के दर्द की भी कोई वीमारी उन्हें उसी समय हो गयी। किसी आयुर्वेदिक वैद्यराज की सलाह से उन्होने विवाह कर लिया, और अव वे विलकुल अच्छे हैं।

"ब्रह्मचर्य्य की श्रेष्ठता का, जिसपर हमारे सभी शास्त्र एकमत हैं, मैं वुद्धि से तो कायल हूँ, किन्तु जिन अनुभवो का वर्णन मैंने ऊपर किया है उनसे तो स्पष्ट हो जाता है कि शुक्र-ग्रन्थियो से जो वीर्य्य निकलता है उसे शरीर मे ही पचा लेने की ताकत हममे नहीं है। इसलिए वह जहर वन जाता है। अतएव, मैं आपसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि मेरे ऐसे

लोगो के लाभ के लिए, जिन्हे ब्रह्मचर्य्य और आत्म-सयम के महत्व के विषय मे कुछ सदेह नहीं है, य इ मे **हठयोग** वा **प्राणायम** के कुछ साधन बतलाइए, जिनके सहारे हम अपने शरीर मे इन प्राणशक्ति को पचा सकें।"

इन भाइयों के अनुभव असाधारण नहीं है, बल्कि बहुतो के ऐसे ही अनुभवों के नमूने मात्र है। ऐसे उदाहरण मैं जानता हू जब कि अधूरे प्रमाणो को ही लेकर साधारण नियम निकालने मे उतावली की गयी है। इस प्राणशक्ति को शरीर मे ही बचा रखने और फिर पचा लेने की योग्यता बहुत अभ्यास से आती है। ऐसा तो होना भी चाहिए, क्योंकि किसी दूसरी साधना से शरीर और मन को इतनी शक्ति नहीं प्राप्त होती है। दवाएँ और यत्र, शरीर को अच्छी कामचलाऊ दशा मे रख सकते है, माना, किन्तु उनमे चित्त इतना निर्बल हो जाता है कि वह मनोविकारों का दमन नहीं कर सकता और ये मनोविकार जानी दुश्मन के समान हर किसीको घेरे रहते है।

हम काम तो वैसे करते है जिनसे लाभ तो दूर, उलटे हानि ही होनी चाहिए, परन्तु साधारण सयम से ही बहुत लाभ की आशा बारबार किया करते है। हमारा साधारण जीवन-क्रम विकारो को तृप्त करने के लिए ही बनाया जाता है, हमारा भोजन, साहित्य, मनोरजन, काम का समय, ये सभी कुछ हमारे पाशविक विकारो को ही उत्तेजित और सतुष्ट करने के लिए निश्चित किये जाते है। हममे से अधिकाश की इच्छा विवाह करने, लडके पैदा करने, भले ही थोडे सयत रूप मे हो किन्तु साधारणत सुख भोगने की ही होती है। और अखीर तक कमोबेश ऐसा होता ही रहेगा।

किन्तु साधारण नियम के अपवाद जैसे हमेशा से होते आये है वैसे अब भी होते हैं। ऐसे भी मनुष्य हुए हैं जिन्होने मानवजाति की सेवा मे, या यो कहो कि भगवान् की ही सेवा मे, जीवन लगा देना चाहा है। वे वसुधा-कुटुव की और निजी कुटुम्ब की सेवा में अपना समय अलग २ बॉटना नही चाहते। जरूर ही ऐसे मनुष्यो के लिए उस प्रकार रहना सभव नही है जिस जीवन से खास किसी व्यक्ति विशेष की ही उन्नति सभव हो। जो भगवान् की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य्य-व्रत लेगे, उन पुरुषो को जीवन की ढिलाइयों को छोड देना पडेगा और इस कठोर सयम मे ही सुख का अनुभव करना होगा। 'दुनिया में' भले ही रहें मगर वे 'दुनियवी' नही हो सकते। उनका भोजन, धधा, काम करने का समय, मनोरञ्जन, साहित्य, जीवन का उद्देश्य आदि सर्व साधारण से अवश्य ही भिन्न होगे।

अब इसपर विचार करना चाहिए कि पत्र-लेखक और उनके मित्र ने सपूर्ण-ब्रह्मचर्य्य पालन को क्या अपना ध्येय बनाया था और अपने जीवन को क्या उसी ढाचें में ढाला भी था? यदि उन्होने ऐसा नहीं किया था, तो फिर यह समझने में कुछ कठिनाई नहीं होगी कि वीर्य्य-पात से एक आदमी को आराम क्यो कर मिलता था और दूसरे को निर्वलता क्यो होती थी। उस दूसरे आदमी के लिए तो विवाह ही दवा थी। अधिकाश मनुष्यो के अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जब मन में विवाह का ही विचार भरा हो तो उस स्थिति में अधिकाश मनुष्यों के लिए विवाह ही प्राकृत दशा और इष्ट है। जो विचार दवाये न जाने पर भी अमूर्त ही छोड दिया जाता है उसकी शक्ति, वैसे ही विचार की अपेक्षा जिसको हम मूर्त कर लेते हैं,

यानी जिसका अमल कर लेते हैं, कहीं अधिक होती है। जब उस क्रिया का हम यथोचित संयम कर लेते हैं तो, उसका असर विचार पर भी पड़ता है और विचार का संयम भी होता है। इस प्रकार जिस विचार पर अमल कर लिया, वह कैदी सा बन जाता है और काबू में आ जाता है। इस दृष्टि से विवाह भी एक प्रकार का संयम ही मालूम होता है।

मेरे लिए, एक अखबारी लेख में, उन लोगों के लाभ के लिए, जो नियमित संयत जीवन बिताना चाहते हैं, ब्यौरेवार सलाह देनी ठीक न होगी। उन्हें तो मैं, कई वर्ष पहले इसी विषय पर लिखे हुए अपने ग्रंथ "आरोग्य के बारे में सामान्य ज्ञान" को पढ़ने की सलाह दूंगा। नये अनुभवों के अनुसार, इसे कहीं २ दुहराने की जरूरत है सही, किन्तु इसमें एक भी ऐसी बात नहीं है, जिसे मैं लौटाना चाहूँ। हां, साधारण नियम यहां भले ही दिये जा सकते हैं।

(१) खाने में हमेशे संयम से काम लेना। थोड़ी मीठी भूख रहते ही चौके से हमेशे उठ जाना।

(२) बहुत गर्म मसालों और घी तेल से बने हुए शाकाहार से अवश्य बचना चाहिए। जब दूध पूरा मिलता हो तो स्नेह (घी, तेल, आदि चिकने पदार्थ) अलग से खाना बिल्कुल अनावश्यक है। जब प्राण शक्ति का थोड़ा ही नाश हो तो अल्प भोजन भी काफी होता है।

(३) शुद्ध काम में हमेशा मन और शरीर को लगाये रखना।

(४) सवेरे सो जाना और सवेरे उठ बैठना परमावश्यक है।

(५) सबसे बडी बात तो यह है कि सयत जीवन बिताने में ही ईश्वर-प्राप्ति की उत्कट जीवन्त अभिलाषा मिली रहती है। जब इस परम तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है तबसे ईश्वर के ऊपर यह भरोसा बराबर बढता ही जाता है कि वे स्वय ही अपने इस यत्र को (मनुष्य के शरीर को) विशुद्ध और चालू रक्खेंगे। गीता मे कहा है—

"विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्ज्जं रसोप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥"

यह अक्षरश सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायाम की बात करते हैं। मेरा विश्वास है कि आत्म-सयम मे उनका महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु मुझे इसका खेद है कि इस विषय मे मेरे निजी अनुभव, कुछ ऐसे नही हैं जो लिखने लायक हो। जहा तक मुझे मालूम है, इस विषय पर इस जमाने के अनुभव के आधार पर लिखा हुआ साहित्य है ही नही। परन्तु यह विषय अध्ययन करने योग्य है। लेकिन मैं अपने अनभिज्ञ पाठकों को इसके प्रयोग करने या जो कोई हठयोगी मिल जाय उसीको गुरु बना लेने से सावधान कर देना चाहता हूँ। उन्हें निश्चय जान लेना चाहिए कि सयत और धार्मिक जीवन मे ही अभीष्ट सयम के पालन की काफी शक्ति है।

—<>—<>—

एकान्त वार्ता

ब्रह्मचर्य के मबंध मे प्रश्न पूछने वालो के इतने पत्र मेरे पास आते है, और इस विषय में मेरे विचार इतने दृढ हैं कि मैं, खास कर राष्ट्र की इस सबसे नाजुक घडी पर, अपने विचारों और अनुभवों के फलो को 'यग इण्डिया' के पाठको से छिपा नहीं रख सकता।

अँगरेजी शब्द celibacy का सस्कृत पर्याय ब्रह्मचर्य है, मगर ब्रह्मचर्य का अर्थ उससे कही अधिक वडा है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है सभी इन्द्रियो और विकारो पर संपूर्ण अधिकार। ब्रह्मचारी के लिए कुछ भी असभव नहीं है मगर यह एक

आदर्श स्थिति है जिसे विरले ही पा पाते हैं। यह करीब २ ज्यामिति की आदर्श रेखा के समान है जो केवल कल्पना मे ही रहती है मगर प्रत्यक्ष खींची नही जा सक्ती। मगर तौभी ज्यामिति में यह परिभाषा महत्वपूर्ण है और इससे बडे २ परिणाम निकलते हैं। वैसे ही सम्पूर्ण ब्रह्मचारी भी केवल कल्पना में ही रह सकता है। मगर अगर हम उसे अपनी मानसिक आखों के आगे दिन रात रक्खे न रहें तो हम वेपेंदी के लोटे वने रहेंगे। काल्पनिक रेखा के जितने ही नजदीक पहुँच सकेंगे, उतनी ही मम्पूर्णता भी प्राप्त होगी।

मगर अभी के लिए तो मै स्त्री-सभोग न करने के सकुचित अर्थ में ही ब्रह्मचर्य को लगा। मैं मानता हूँ कि आत्मिक पूर्णता के लिए विचार, शब्द और कार्य सभी मे सपूर्ण आत्म-सयम जरूरी है। जिस राष्ट्र मे ऐसे आदमी नही हैं, वह इस कमी के कारण गरीव गिना जायगा। मगर मेरा मतलव है राष्ट्र की मौजूदा हालत में अस्थायी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता सिद्ध करने का।

रोग, अकाल, दरिद्रता और यहा तक कि भूखमरी भी हमारे हिस्से मे कुछ अधिक पडी है। गुलामी की चक्की में हम इस सूक्ष्म रीति से पिसे चले जाते हैं कि अगर्चे कि हमारी इतनी आर्थिक, मानमिक और नैतिक हानि हो रही है, मगर हममें से कितने ही उसे गुलामी मानने को ही तैयार नहीं और भूल से मानते हैं कि हम स्वाधीनता-पथ पर आगे वढे जा रहे हैं। दिन दूना रात चौगुना वटने वाला सैनिक-खर्च, लकाशायर और दूसरे ब्रिटिश हितो के लिए ही जान वूझ कर लाभदायक वनायी गयी हमारी अर्थ-नीति और सरकार के भिन्न २ विभागो

को चलाने की शाही फिजूल खर्ची ने देश के ऊपर वह भार लादा है जिससे उसकी गरीबी वढी है और रोगो का आक्रमण रोकने की शक्ति घटी है। गोखले के शब्दों मे इस शासन-नीति ने हमारी वाढ इतनी मार दी है कि हमारे वडो से वडो को भी झुकना पडता है। अमृतसर मे हिन्दुस्तान को पेट के वल भी रेंगाया गया। पजाव का सोच सोच कर किया गया अपमान और हिन्दुस्तानी मुसलमानो को दिये गये वचन को तोडने के लिए माफी मॉगने से मगरूरी से इनकार करना—नैतिक दासता के सबसे ताजे उदाहरण हैं। उनसे सीधे हमारी आत्मा को ही धक्का पहुँचता है। अगर हम इन दो जुल्मो को सह लेवे तो फिर हमारी नपुसकता की यह पूर्ति कही जायगी।

हम लोगो के लिए, जो स्थिति को जानते है, ऐसे बुरे वातावरण मे वच्चे पेदा करना क्या उचित है? जव तक हमें ऐसा मालूम होता है और हम वेवस, रोगी और अकाल-पीडित हैं, तव तक वच्चे पैदा करते जाकर हम निर्वलो और गुलामो की ही सख्या वढाते है। जव तक हिन्दुस्तान स्वतंत्र देश नहीं हो जाता, जो अनिवार्य अकाल के समय अपने आहार का प्रवन्ध कर सके, मलेरिया, हैजा, इन्फ्लुएन्जा और दूसरी मरियो का इलाज करना जान जाय, हमे वच्चे पैदा करने का अधिकार नही है। पाठको से मै वह दु'ख छिपा नही सकता जो इस देश मे वच्चो का जन्म सुन कर मुझे होता है। मुझे यह मानना ही पडेगा कि मैंने वर्षो तक धैर्य के साथ इसपर विचार किया है कि स्वेच्छा-संयम के द्वारा हम सन्तानोत्पत्ति रोक लेवे। हिन्दुस्तान को आज अपनी मौजूदा आवादी की भी खोज खवर लेने की ताकत नही है,

मगर इस लिए नही कि उसे अतिशय आबादी का रोग है बल्कि इस लिए कि उसके ऊपर वैदेशिक आधिपत्य है, जिसका मूल मंत्र ही उसे अधिकाधिक लूटते जाना है।

सतानोत्पत्ति रोकी क्यों कर जा सकेगी ? यूरोप मे जो अनैतिक और गैर कुदरती या कृत्रिम साधन काम मे लाये जाते है, उनसे नही, बल्कि आत्म-सयम और नियमित जीवन से। माता-पिता को अपने बालको को ब्रह्मचर्य का अभ्यास कराना ही पडेगा। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार बालकों के लिए विवाह करने की उम्र कम से कम २५ वर्ष की होनी चाहिए। अगर हिन्दुस्तान की माताएँ यह विश्वास कर सकें कि लडके लडकियों को विवाहित जीवन की शिक्षा देना पाप है तो आधे विवाह तो अपने आप ही रुक जायेंगे। फिर हमे अपनी गर्म जल-वायु के कारण लडकियो के शीघ्र रजस्वला हो जाने के झूठे सिद्धान्त में भी विश्वास करने की जरूरत नहीं है। इस शीघ्र स्यानेपन के समान दूसरा भद्दा अन्ध विश्वास मैंने नही देखा है। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यौवन से जलवायु का कोई सबध ही नहीं है। असमय यौवन का कारण हमारे पारिवारिक जीवन का नैतिक और मानसिक वायुमडल है। माताएँ और दूसरे सबधी अबोध बच्चों को यह सिखलाना धार्मिक कर्त्तव्य सा मान बैठते हैं कि 'इतनी' बडी उम्र होने पर तुम्हारा विवाह होगा। बचपन मे ही, बल्कि मा की गोद मे ही उनकी सगाई कर दी जाती है। बच्चो के भोजन और कपडे भी उन्हें उत्तेजित करते हैं। हम अपने बालकों को गुडियो की तरह सजाते है— उनके नही बल्कि अपने सुख और घमड के लिए। मैंने बीसों लडको को पाला है। उन्होने बिना किसी कठिनाई के जो कपडा उन्हे दिया

गया, उसे सानन्द पहन लिया है। उन्हे हम सैकडो तरह की गर्म और उत्तेजक चीजे खाने को देते है। अपने अन्ध प्रेम मे उनकी शक्ति की कोई पर्वा नहीं करते। बेशक, फल मिलता है, शीघ्र यौवन, असमय सतानोत्पत्ति और अकाल मृत्यु। माता-पिता पदार्थ-पाठ देते है, जिसे बच्चे सहज ही सीख लेते है। विकारो के सागर में वे आप डूब कर अपने लडको के लिए बे-लगाम स्वच्छन्दता के आदर्श बन जाते है। घर मे किसी लडके के भी बच्चा पैदा होने पर खुशियाँ मनायी जाती, बाजे बजते और दावतें उडती है। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे वातावरण मे रहने पर भी हम और अधिक स्वच्छन्द क्यो न हुए। मुझे इसमें जरा भी शक नही है कि अगर उन्हे देश का भला मजूर है और वे हिन्दुस्तान को सबल, सुन्दर, और सुगठित स्त्री पुरुषो का राष्ट्र देखना चाहते है तो विवाहित स्त्री-पुरुष पूर्ण सयम से काम लेंगे और हाल मे सन्तानोत्पत्ति करना बद कर देंगे। नव-विवाहितों को भी मैं यही सलाह देता हूँ। कोई काम करते हुए छोडने से कहीं सहज है, उसे शुरू मे ही न करना, जैसे कि जिसने कभी शराब न पी हो, उसके लिए जन्मभर शराब न पीनी, शराबी या अल्पसयमी के शराब छोडने से कही अधिक सहज है। गिर कर उठने से लाख दर्जे सहज सीधे खडे रहना है। यह कहना सरासर गलत है कि ब्रह्मचर्य की शिक्षा केवल उन्हींको दी जा सकती है जो भोग भोगते-भोगते थक गये हों। निर्बल को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने मे कोई अर्थ ही नही है। और मेरा मतलब यह है कि हम बूढे हो या जवान, भोगो से ऊबे हुए हो या नही, हमारा इस समय धर्म है कि हम अपनी गुलामी की विरासत देने को बच्चे पैदा न करे।

'माता-पिताओं को क्या मैं यह भी खयाल दिला दूँ कि वे अपने पति या पत्नी के हकों के तर्क के जाल मे न पडें? भोग के लिए रजामदी की जरूरत पडती है, सयम के लिए नहीं। यह तो खुलासा सत्य है।

जिस समय हम लोग एक शक्तिशाली सरकार के साथ जीवन-मरण की लडाई में लगे होगे, हमें अपनी सारी शारीरिक, भौतिक, नैतिक और आत्मिक शक्ति की जरूरत पडेगी। जब तक हम प्राणो से भी प्रिय इस एक वस्तु की रक्षा नहीं करते, वह मिल नहीं सकती। इस व्यक्तिगत पवित्रता के बिना हम हमेशा ही गुलाम बने रहेगे। हम अपने को यह सोच कर धोखा न दे कि चूकि हमारी समझ मे यह सरकार बुरी है, इसलिए व्यक्तिगत पवित्रता मे अँग्रेजों से घृणा करनी चाहिए। मूल नीतियो को आत्मिक उन्नति का साधन न मानते हुए भी उनका पालन शरीर से तो वे खूब ही करते है। देश के राजनैतिक जीवन में जितने अँग्रेज लगे हुए हैं, उनमे हमसे कहीं अधिक ब्रह्मचारी और कुमारियॉ हैं। हमारे यहाँ कुमारियाँ तो प्राय होती ही नहीं। जो थोडी साधुनी कुमारियॉ होती हैं, उनका कोई असर राजनैतिक जीवन पर नही रह जाता, मगर यूरोप मे हजारो ही ब्रह्मचर्य को मामूली बात समझते है।

अब मैं पाठको के सामने थोडे सीधे-सादे नियम रखता हूँ। इनका आधार केवल मेरे ही नहीं बल्कि मेरे कितने एक साथियों के अनुभव है।

१ लडके-लडकियों को सीधे-सादे और प्राकृतिक रूप से यह पूरा विश्वास रख कर पालना चाहिए कि वे पवित्र है और पवित्र रह सकते हैं।

२ गर्म और उत्तेजक आहारों से जैसे, अचार चटनी या मिर्चों वगैरह से, चिकने और भारी पदार्थों से, जैसे, मिठाइयाँ या तले हुए पदार्थों वगैरह से सब किसी को परहेज करना चाहिए।

३ पति-पत्नी को अलग कमरों में रहना और एकान्त से बचना चाहिए।

४ शरीर और मन दोनों को बराबर अच्छे काम मे लगाये रहना चाहिए।

५ सबेरे सोने और सबेरे उठने के नियम की सख्त पाबंदी होनी चाहिए।

६ सभी बुरे साहित्य से बचना चाहिए। बुरे विचारो की दवा भले विचार हैं।

७ विकारों को उत्तेजन देने वाले थियेटर, बायस्कोप, नाच, तमाशों से बचना चाहिए।

८ स्वप्न-दोष से घबराने की कोई जरूरत नहीं है। साधारण मजबूत आदमी के लिए हर बार ठण्डे पानी से स्नान कर लेना ही इसका सबसे अच्छा इलाज है। यह कहना गलत है कि स्वप्न-दोषों से बचने के लिए कभी-कभी सम्भोग कर लेना चाहिए।

९ सबसे बडी बात तो यह है कि पति-पत्नी तक के बीच भी ब्रह्मचर्य को कोई असभव या कठिन न मान लें। इसके उलटे ब्रह्मचर्य को जीवन का स्वाभाविक और साधारण अभ्यास समझना होगा।

१०. प्रति दिन पवित्रता के लिए सच्चे दिल से की गई प्रार्थना से आदमी दिनों-दिन पवित्र होता जाता है।

गुह्य प्रकरण

जिन्होंने आरोग्य के प्रकरण ध्यानपूर्वक पढे हैं, उनसे मेरी विनय है कि वे यह प्रकरण विशेष ध्यान से पढें और इस पर खूब विचार करें। दूसरे प्रकरण भी आवेंगे और वे बहुत लाभदायक होंगे सही, मगर इस विषय पर इसके जैसा महत्त्व-पूर्ण कोई न होगा। मैं पहले ही बतला आया हूँ कि इन अध्यायों मे मैंने एक भी बात ऐसी नही लिखी है जिसका मैंने खुद अनुभव न किया हो या जिसे मैं दृढता-पूर्वक न मानता होऊँ।

आरोग्य की कई एक कुंजियाँ हैं, मगर उसकी मुख्य कुंजी तो ब्रह्मचर्य है। अच्छी हवा, अच्छी खूराक, अच्छा पानी वगैरह से हम तन्दुरुस्ती पैदा कर सकते है सही, मगर हम जितना कमायें, उतना उडाते भी जायें तो कुछ न बचेगा। उसी प्रकार जितनी तन्दुरुस्ती मिले, उतनी उडावें भी तो पूँजी क्या बचेगी? इसमे किसी के शक करने की जगह ही नही है कि आरोग्य-रूपी धन का संचय करने के लिए स्त्री और पुरुष दोनो को ही ब्रह्मचर्य की पूरी-पूरी जरूरत है। जिन्होंने अपने वीर्य का संचय किया है, वे ही वीर्यवान—बलवान—कहलाते हैं, गिने जाते हैं।

सवाल होगा कि ब्रह्मचर्य है क्या? पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का भोग न करना ही ब्रह्मचर्य है। 'भोग न करने' का अर्थ एक दूसरे को विषय की इच्छा से स्पर्श न करना भर ही नही है बल्कि इस बात का विचार भी न करना है। इसका स्वप्न भी न होना चाहिए। स्त्री को देख कर पुरुष विव्हल न हो जाय, पुरुष को देख कर स्त्री विव्हल न बने। प्रकृति ने जो गुह्य शक्ति हमें दी है, उसे दबा कर अपने शरीर मे ही सग्रह करना और उसका उपयोग केवल अपने शरीर के ही नहीं बल्कि मन के, बुद्धि के, और स्मरण-शक्ति के स्वास्थ्य को बढाने मे करना च हिए।

मगर हमारे आसपास क्या नजारे दिखलाई पडते हैं? छोटे-बडे, स्त्री-पुरुष, सभी के सभी इस मोह मे डूबे पडे हुए हैं। ऐसे समय हम पागल बन जाते हैं। हमारी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, हमारी ऑखें पर्दे से ढॅक जाती हैं, हम कामान्ध बन जाते हैं। काम मुग्ध स्त्री-पुरुषो को, और लडके-लडकियो को मैंने बिलकुल पागल बन जाते हुए देखा है। मेरा अपना अनुभव भी इससे जुदा नही है। मैं जब-जब इस दशा में आया हूँ, तब-तब अपना भान भूल गया हूँ। यह चीज ही ऐसी है। इस प्रकार हम एक रत्ती भर रति-सुख के लिए मन भर शक्ति पल भर में गॅवा बैठते है। जब मद उतरता है, हम रक बन जाते हैं। दूसरे दिन सबेरे हमारा शरीर भारी रहता है, हमें सच्चा चैन नही मिलता, हमारी काया शिथिल हो जाती है। हमारा मन बेठिकाने रहता है।

यह सब ठिकाने लाने, रखने के लिए हम भर-भर कढाई दूध पीते हैं, भस्म फॉकते हैं, याकूती लेते हैं और वैद्यो से

'पुष्टई' माँगा करते हैं। किस खूराक से कामोत्तेजना बढेगी—बस इसीकी खोज करते हैं। यों दिन जाते हैं। और ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते हैं, त्यों त्यों हम अग से और बुद्धि से हीन होते जाते है और बुढापे में हमारी मति मारी गई-सी दिखलाई पडती है।

सच पूछो तो ऐसा होना ही नही चाहिए। बुढापे में बुद्धि मन्द होने के बदले तेज होनी चाहिए। हमारी हालत तो ऐसी होनी चाहिए कि इस देह के अनुभव हमको और दूसरों को लाभदायक हो सकें। जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसकी वैसी ही स्थिति रहती है। उसे मरण का भय नहीं रहता,—और न वह मरते समय ईश्वर को भूलता ही है, वह झूठी तोबा नहीं करता। उसे मरण-काल के उ पात नही सताते और वह मालिक को अपना हिसाब हॅसते-हॅसते देने जाता है। वही तो मर्द है। उसी का आरोग्य सच्चा कहा जायगा। जो उसके विपरीत मरे वही स्त्री है।

साधारणतया हम विचार नही करते कि इस जगत् में मौज-मजा, डाह, ईर्ष्या, बडप्पन, आडम्बर, क्रोध, अधीरता, जहर वगैरह की जड ब्रह्मचर्य के हमारे भग मे ही है। यों हमारा मन अपने हाथो न रहे, और हम हर रोज एक बार या बार-बार छोटे बच्चे से भी मूर्ख बन जाते हैं तो फिर जान-बूझ कर या अनजाने, हम कितने न पाप कर बैठते हैं? फिर क्या हम घोर पाप करते भी रुकेंगे?

पर ऐसे 'ब्रह्मचारी' को देखा किसने है? ऐसे सवाल करनेवाले भी भरे पडे हैं कि अगर सभी कोई ऐसे ब्रह्मचारी बन जाय तो दुनिया का सत्यानाश ही होगा। इसका विचार करने

में धर्मचर्चा का आ जाना सभव है, इसलिए, उतना छोड कर केवल दुनियवी दृष्टि से ही विचार करूँगा। मेरे मत मे इन दोनों सवालों की जड मे हमारी कायरता और डरपोकपन घुसा हुआ है। हम ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते नहीं और इस लिए उसमें से भागने के रास्ते ढूँढते फिरते है। इस दुनिया में ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले कितने ही भरे पडे हैं, परन्तु अगर वे गली–गली मारे फिरें तो फिर उनकी कीमत ही क्या रहे? हीरा निकालने के लिए भी पृथ्वी के पेट मे हजारों मजदूरों को घुसना पडता है, और तो भी जब ककर–पत्थर के पहाड–से ढेर लग जाते हैं तब कहीं मुट्ठीभर हीरा हाथ आता है। तब ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले हीरे को ढूँढने में कितना परिश्रम करना होगा? इसका हिसाब सहज ही त्रैराशिक से सभी कोई जोड सकते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करने से सृष्टि बन्द हो जाय, तो इससे हमें क्या मतलब? हम कुछ ईश्वर नही है। जिन्होंने सृष्टि बनाई है, वे स्वय सँभाल लेंगे। दूसरे पालन करेंगे कि नहीं यह भी हमारे सोचने की बात नही है। हम व्यापार, वकालत वगैरह धधे शुरू करते समय तो यह नही सोचते कि अगर सब कोई ये धंधे शुरू कर दें तो? ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले स्त्री–पुरुषों को इसका जबाब सहज ही मिल रहेगा।

ससारी आदमी ये विचार अमल में कैसे ला सकते हैं? विवाहित लोग क्या करे? लडके–बालेवाले क्या करें? जो काम को वश मे न रख सकें, वे बेचारे क्या करे?

हमने यह देख लिया कि हम कहाँ तक ऊँचे जा सकते है। अगर हम अपने सामने यही आदर्श रक्खें तो, उसकी हूबहू,

या उसी-जैसी कुछ नकल उतार सकेंगे। लडके को जब अक्षर लिखना सिखलाया जाता है, तव उसके सामने सुन्दर से सुन्दर अक्षर रक्खे जाते है, जिसमे वह अपनी शक्ति के अनुसार पूरी या अधूरी नकल करे। वैसे ही हम भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का आदर्श सामने रख कर, उसकी नकल करने मे लग सकते है। विवाह कर लिया है, तो उससे क्या हुआ? कुदरती कायदा तो यह है कि जब सतति की इच्छा हो तभी ब्रह्मचर्य तोडा जाय। यो विचार-पूर्वक जो दो-तीन, या चार-पॉच वर्षो पर ब्रह्मचर्य तोडेगा, वह बिलकुल पागल नहीं बनेगा और उसके पास वीर्यरूपी शक्ति की पूँजी भी ठीक जमा रहेगी। ऐसे स्त्री-पुरुष शायद ही दिखलाई पडते हैं, जो केवल संतानोत्पत्ति के लिए ही काम-भोग करते हो। पर हजारों आदमी काम भोग ढूँढते है, चाहते और करते है। फल यह होता है कि उन्हें अनचाही सन्तति होती है। ऐसा विषय-भोग करते हुए हम इतने अन्धे वन जाते है कि सामने कुछ देखते ही नही। इसमें स्त्री से अधिक गुनहगार पुरुष ही है। अपनी मूर्खता में उसे स्त्री की निर्वलता का, सन्तान के पालन पोषण की उसकी ताक़त का खयाल भी नहीं रहता। पश्चिम के लोगो ने तो इस बारे में मर्यादा का उल्लघन ही कर दिया है। वे तो भोग भोगने, और सतानोत्पत्ति के बोझे को दूर रखने के अनेक उपचार करते हैं। इन उपचारो पर किताबें लिखी गई हैं और सतानोत्पत्ति रोकने के उपचारो का व्यापार ही चल निकला है। अभी तो हम इस पाप से मुक्त हैं। पर हम अपनी स्त्रियो पर बोझ लादते समय, घडी भर भी विचार नही करते, इसकी पर्वा भी नहीं करते कि

हमारी सन्तान निर्बल, वीर्यहीन, बावली व बुद्धिहीन बनेगी। उलटे, जब सन्तान होती है तब ईश्वर का गुण गाते हैं! हमारी इस दीनदशा को छिपाने का यह एक ढंग है। **हम इसे ईश्वरी कोप क्यों न मानें कि हमें निर्बल, पंगु, विषयी, डरपोक संतान होती है? बारह साल के लडके के यहाँ भी लडका हो तो इसमें सुख की क्या बात है? इसमें आनन्दोत्सव क्या मनाना होगा? बारह साल की लडकी माता बने तो इसे हम महाकोप क्यों न मानें?** हम जानते हैं कि नई बेल को फल लगे तो वह निर्बल होगी। हम इसका उपाय करते हैं कि जिसमें उसे फल न लगें। पर बालक स्त्री के बालक वर से लडका हो तो हम उत्सव मनाते है, मानो सामने खडी दीवाल भी हम भूल जाते हैं। अगर हिन्दुस्तान में या दुनिया मे नामर्द लडके, चीटियों-जैसे पैदा होने लगे तो इससे क्या दुनिया का उद्धार होगा? एक तरह से तो हमसे पशु ही अच्छे है। जब उन्हे बच्चे पैदा कराने हों, तभी हम नर मादे का मिलाप कराते हैं। संयोग के बाद, गर्भ-काल में, और वैसे ही जन्म के बाद जबतक बच्चा दूध छोड कर बडा नहीं होता तबतक का समय बिलकुल पवित्र गिनना चाहिए। इस काल मे स्त्री और पुरुष दोनों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इसके बदले हम घडी भर भी विचार किये बिना, अपना काम करते ही चले जाते हैं। हमारा मन तो इतना रोगी है। इसीका नाम है असाध्य रोग। यह रोग हमें मौत से मुलाकात कराता है। और जबतक मौत नहीं आती, हम बावले जैसे मारे-मारे फिरते हैं। विवाहित स्त्री-पुरुषो का खास फर्ज है कि वे अपने

विवाह का गलत अर्थ न करते हुए, उसका शुद्ध अर्थ लगावें और जब सचमुच सन्तान न हो तो सिर्फ वारिस के लिए ही ब्रह्मचर्य का भग करें ।

हमारी दयाजनक दशा मे ऐसा करना बहुत मुश्किल है । हमारी खूराक, हमारी रहनसहन, हमारी बातें, हमारे आसपास के दृश्य सभी हमारी विषय-वासना के जगानेवाले हैं । हमारे ऊपर अफीम जैसा विषय का नशा चढा हुआ होता है । ऐसी स्थिति में विचार करके पीछे हटना हमसे कैसे बने ? पर ऐसी शका उठानेवालों के लिए यह लेख नहीं लिखा गया है । यह लेख तो उन्हीं के लिए है, जो विचार करके करने लायक काम करने को तैयार हो । जो अपनी स्थिति पर सन्तोष करके बैठे हों, उन्हें तो इसे पढना भी मुश्किल मालूम होगा । पर जो अपनी कगाल हालत कुछ देख सके हैं और उससे घबरा उठे हैं, उन्हीं की मदद करना, इस लेख का उद्देश्य है ।

ऊपर के लेख पर से हम देख सके हैं कि ऐसे मुश्किल जमाने में अविवाहितो को विवाह करना ही नहीं चाहिए या करे बिना चले ही नहीं तो जहाँ तक हो सके देर करके करना चाहिए । **नवजवानों को पचीस वर्ष की उम्र से पहले विवाह न करने का व्रत लेना चाहिए ।** आरोग्य-प्राप्ति के लाभ को छोड कर इस व्रत से होनेवाले और दूसरे लाभो का हम विचार नहीं करते, मगर उन्हें सभी कोई उठा सकते हैं ।

जो मा-बाप इस लेख को पढें, उनसे मुझे यह कहना है कि वे अपने बच्चों की बचपन में ही सगाई करके उन्हें बेंच डालने से घातक बनते हैं । अपने बच्चो का लाभ देखने के बदले वे

अपना ही अन्ध स्वार्थ देखते है । उन्हें तो आप बडा बनना है, अपनी जाति बिरादरी मे नाम कमाना है, लडके का ब्याह कर के तमाशा देखना है । लडके का हित देखें तो, उसका पढना लिखना देखें, उसका जतन करें, उसका शरीर बनावे । घर–गिरिस्ती की खटपट मे डाल देने से बढ कर उसका दूसरा कौन–सा बडा अहित हो सकता है ?

आखिर विवाहित स्त्री और पुरुष में से एक की मौत हो जाने पर दूसरे को वैधव्य पालने से स्वास्थ्य का लाभ ही है । कितने एक डाक्टरों की राय है कि जवान स्त्री या पुरुष को वीर्यपात करने का अवसर मिलना ही चाहिए । दूसरे कई एक डाक्टर कहते हैं कि किसी भी हालत मे वीर्यपात कराने की जरूरत नही है । जब डाक्टर यों लड रहे हों, तब अपने विचार को डाक्टरी मत का सहारा मिलने से ऐसा समझना ही नही चाहिए कि विषय में लीन रहना ही उचित है । मेरे अपने अनुभवों और दूसरों के जो अनुभव मै जानता हूँ, उन पर से मैं बेधडक कह सकता हूँ कि आरोग्य बचाये रखने के लिए विषय–भोग जरूरी नहीं है और इतना ही नही बल्कि विषय करने से — वीर्यपात होने से — आरोग्य को बहुत नुकसान पहुँचता है । बहुत साल की प्राप्त मजबूती — तन और मन दोनो की — एक बार के वीर्यपात से इतनी अधिक जाती रहती है कि उसे लौटाने मे बहुत समय चाहिए, और उतना समय लगाने पर भी असल स्थिति आ ही नहीं सकती । टूटे शीशे को जोड कर उससे काम भले ही लें, मगर है तो वह टूटा हुआ ही ।

वीर्य का जतन करने के लिए स्वच्छ हवा, स्वच्छ पानी, और पहले बतलाये अनुसार स्वच्छ विचार की पूरी जरूरत है ।

इस प्रकार नीति का आरोग्य के साथ वहुत निकट का सम्बन्ध है। सम्पूर्ण नीतिमान् ही सम्पूर्ण आरोग्य पा सकता है। जो जगने के बाद से ही सवेरा समझ कर ऊपर के लेखो पर खूब विचार कर उन्हें अमल मे लावेंगे, वे प्रत्यक्ष अनुभव पा सकेंगे। जिन्होंने थोडे दिनों भी ब्रह्मचर्य का पालन किया होगा, वे अपने शरीर और मन में बढा हुआ वल देख सकेंगे। और एक बार जिसके हाथ पारस मणि लग गया उसको वह अपने जीवन के साथ जतन करके वचा रक्खेगा। जरा भी चूका कि वह देख लेगा कि कितनी वडी भूल हुई है। मैंने तो ब्रह्मचर्य के अगणित लाभ विचारने के बाद, जानने के बाद भूलें की हैं और उनके कडवे फल भी पाये है। भूल के पहले की मेरे मन की भव्य दशा और उसके बाद की दीन दशा की तसवीरें आख के सामने आया ही करती हैं। पर अपनी भूलों से ही मैंने इस पारस मणि की कीमत समझी है। अब अखण्ड पालन करूँगा या नही, यह नहीं जानता। ईश्वर की सहायता से पालन करने की आशा रखता हूँ। उससे मेरे मन और तन को जो लाभ हुए है, उन्हें मै देख सकता हूँ। मै खुद बालकपन में ही ब्याहा गया, बालपन मे ही अन्ध बना, बालपन मे ही बाप बन कर बहुत वर्षों बाद जागा। जग कर देखता हूँ तो अपने को महारात्रि में पडा हुआ पाता हूँ। मेरे अनुभवों से और मेरी भूल से भी अगर कोई चेत जायगा, बच जायगा तो यह प्रकरण लिख कर मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। यह भी त्रैराशिक के हिसाब-जैसा ही है। बहुत लोग कहते हैं और मैं मानता हूँ कि मुझ में उत्साह बहुत है। मेरा मन तो निर्बल गिना ही नही जाता, कितने तो मुझे हठी कहते हैं। मेरे मन और शरीर मे रोग

है, मगर मेरे संसर्ग में आये हुए लोगों में मैं अच्छा तन्दुरुस्त गिना जाता हूँ। अगर कमोवेश वीस साल तक विषय मे रहने के बाद मैं अपनी यह हालत बना सका हूँ तो वे वीस वर्ष भी अगर बचा सका होता तो आज मैं कहाँ होता? मैं खुद तो समझता हूँ कि मेरे उत्साह का पार ही नहीं होता और जनता की सेवा में या अपने स्वार्थ मे ही मैं इतना उत्साह दिखलाता कि मेरी बराबरी करनेवाले की पूरी कसौटी हो जाती। इतना सार मेरे त्रुटि-पूर्ण उदाहरण में से लिया जा सकता है। जिन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य-पालन किया है, उनका शारीरिक, मानसिक और नैतिक बल जिन्होंने देखा है, वही समझ सकते हैं। उसका वर्णन नहीं हो सकता।

इस प्रकरण को पढनेवाले समझ गये होंगे कि जहाँ विवाहितो को ब्रह्मचर्य की सलाह दी गई है, विधुर पुरुष को वैधव्य सिखलाया जाता है, वहाँ पर विवाहित या अविवाहित, स्त्री या पुरुष को दूसरी जगह विषय करने का मौका हो ही नहीं सकता। पर-स्त्री या वेश्या पर कुदृष्टि डालने के घोर परिणामो पर आरोग्य के विषय मे विचार नही किया जा सकता। यह तो धर्म और गहरे नीति-शास्त्र का विषय है। यहाँ तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पर-स्त्री और वेश्या-गमन से आदमी सूजाक वगैरह नाम न लेने लायक बीमारियो से सडते हुए दिखलाई पडते हैं। कुदरत तो ऐसी दया करती है कि इन लोगों के आगे पापों का फल तुरत ही आ जाता है। तो भी वे आँख मूँदे ही रहते हैं और अपने रोगों के लिए डाक्टरों के यहाँ भटकते फिरते हैं। जहाँ पर-स्त्री-गमन न हो, वहाँ पर सैकडे पचास डाक्टर बेकार हो जायँगे। ये बीमारियाँ

मनुष्य-जाति के गले यों आ पडी हैं कि विचारशील डाक्टर कहते हैं कि उनके लाखो शोध चलाते रहने पर भी, अगर पर-स्त्री-गमन का रोग जारी ही रहा तो फिर मनुष्य-जाति का अन्त नजदीक ही है। इसके रोगों की दवायें भी ऐसी जहरीली होती हैं कि अगर उनसे एक रोग का नाश हुआ-सा लगता है तो दूसरे रोग घर कर लेते हैं और पीढी दर पीढी चल निकलते है।

अब विवाहितों को ब्रह्मचर्य-पालन का उपाय बता कर, इस लम्बे प्रकरण को खत्म करना चाहिए। ब्रह्मचर्य के लिए सिर्फ स्वच्छ हवा, पानी और खूराक का ही खयाल रखने से नही चलेगा। उन्हें तो अपनी स्त्री के साथ एकान्त छोडना चाहिए। विचार करने से मालूम होता है कि विषय-सम्भोग के सिवा एकान्त की जरूरत ही नहीं होनी चाहिए। रात मे स्त्री-पुरुष को अलग-अलग कमरों में सोना चाहिए। सारे दिन दोनों को अच्छे धधो और विचारो मे लगे रहना चाहिए। जिसमे अपने सुविचार को उत्तेजन मिले, वैसी पुस्तकें और वैसे महापुरुषो के चरित्र पढने चाहिएँ। यह विचार बारबार करना चाहिए कि भोग में तो दु ख ही दु ख है। जब-जब विषय की इच्छा हो आवे, ठण्डे पानी से नहा लेना चाहिए। शरीर मे जो महाअग्नि है, वह इससे शान्त होकर पुरुष और स्त्री दोनो को उपकारी होगी और दूसरा ही लाभदायक रूप धर कर उनका सच्चा सुख बढावेगी। ऐसा करना मुश्किल है, मगर मुश्किलो को जीतने के लिए ही तो हम पैदा हुए हैं। आरोग्य प्राप्त करना हो तो ये मुश्किलें जीतनी ही पडेंगी।

ब्रह्मचर्य

भादरण में एक मानपत्र का उत्तर देते हुए लोगों के अनुरोध से गांधीजी ने ब्रह्मचर्य पर लम्बा प्रवचन किया। उसका सार यहाँ दिया जाता है—

आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य के विषय पर मैं कुछ कहूँ। कितने ही विषय ऐसे हैं कि जिन पर मैं 'नवजीवन' में प्रसगोपात्त ही लिखता हूँ और उन पर व्याख्यान तो शायद ही देता हूँ। क्यों कि यह विषय ही ऐसा है कि कह कर नहीं समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्य के विषय में सुनना चाहते हैं। जिस ब्रह्मचर्य की विस्तृत व्याख्या 'समस्त इन्द्रियो का सयम' है, उसके विषय में नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्य को भी शास्त्रो में बडा कठिन बतलाया गया है। यह बात ९९ फी सदी सच है, इसमें १ फी सदी की कमी है। इसका पालन इसलिए कठिन

मालूम पड़ता है कि हम दूसरी इन्द्रियों को संयम में नहीं रखते, खास कर जीभ को। जो अपनी जिव्हा को कब्जे में रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणि-शास्त्रज्ञों का यह कहना सच है कि पशु जिस दर्जे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उस दर्जे तक मनुष्य नहीं करता। इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जीभ पर पूरा-पूरा निग्रह रखते हैं—कोशिश करके नहीं बल्कि स्वभाव से ही। वे केवल घास पर ही अपना गुजर करते हैं और वह भी महज पेट भरने लायक ही खाते हैं। वे जीने के लिए खाते हैं, खाने के लिए नहीं जीते। पर हम तो इसके बिल्कुल विपरीत करते हैं। माँ बच्चे को तरह-तरह के सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालक पर प्रेम दिखाने का यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन चीजों का जायका बढ़ाते नहीं बल्कि घटाते हैं। स्वाद तो भूख में रहता है। भूख के वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूख के आदमी को लड्डू भी फीके और बेस्वाद मालूम होंगे। पर हम तो न जाने क्या-क्या खा-खा कर पेट को ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता।

जो आँखें हमें ईश्वर ने देखने के लिए दी हैं उन्हें हम मलीन करते हैं और देखने लायक वस्तुओं को देखना नहीं सीखते। 'माता गायत्री क्यों न पढ़े और बालकों को वह गायत्री क्यों न सिखाए?' इसकी छानबीन करने के बदले अगर वह उसके तत्त्व—सूर्योपासना—को समझ कर उनसे सूर्योपासना करावे तो कितना अच्छा हो? सूर्य की उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों ही कर सकते हैं। यह तो

मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया। इस उपासना के मानी क्या हैं? यही कि अपना सिर ऊँचा रख कर, सूर्यनारायण के दर्शन करके, आँख की शुद्धि की जाय। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्होने कहा कि सूर्योदय मे जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है, वह और कहीं नहीं दिखाई दे सकती। ईश्वर के जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नही मिल सकता, और आकाश से बढकर भव्य रग-भूमि भी कही नहीं मिल सकती। पर आज कौन सी माता बालक की आँखें धो कर उसे आकाश-दर्शन कराती है? बल्कि माता के भावों मे तो अनेक प्रपच रहते है। बडे-बडे घरो में जो शिक्षा मिलती है उसके फल-स्वरूप तो लडका शायद बडा अफसर होगा, पर इस बात का कौन विचार करता है कि घर मे जाने-बेजाने जो शिक्षा बच्चो को मिलती है उससे कितनी बातें वह ग्रहण कर लेता है। माँ-बाप हमारे शरीर को ढकते हैं, सजाते है, पर इससे कही शोभा बढ सकती है? कपडे बदन को ढकने के लिए है, सर्दी-गर्मी से बचाने के लिए हैं, सजाने के लिए नहीं। अगर बालक का शरीर वज्र-सा दृढ बनाना है तो जाडे से ठिठुरते हुए लडके को हम अँगीठी के पास बैठावेंगे अथवा मैदान में खेलने-कूदने भेज देंगे, या खेत मे काम पर छोड देंगे? उसका शरीर दृढ बनाने का बस यही एक उपाय है। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है उसका शरीर जरूर ही वज्र की तरह होना चाहिए। हम तो बच्चे के शरीर का सत्यानाश कर डालते हैं। उसे घर मे रखने से जो झूठी गर्मी आती है, उसे हम छाजन की उपमा दे सकते हैं। दुलार-दुलार कर तो हम उसका शरीर सिर्फ बिगाड ही पाते है।

यह तो हुई कपड़े की बात । फिर घर में तरह-तरह की बातें करके हम उसके मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं । उसकी शादी की बातें किया करते है, और इसी किस्म की चीजें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं । मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज जंगली ही क्यों न बन गये है । मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनों के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो जाती है । ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है । यदि हम ब्रह्मचर्य के रास्ते से ये सब विघ्न दूर कर दें तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय ।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनिया के साथ शारीरिक मुकाबला करना चाहते हैं । उसके दो रास्ते हैं । एक आसुरी और दूसरा दैवी । आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करने के लिए हर किस्म के उपायों से काम लेना—हर तरह की चीजें खाना, गोमास खाना इत्यादि । मेरे लड़कपन में मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता था कि मासाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो हम अंग्रेजों की तरह हट्टे-कट्टे न हो सकेंगे । जापान को भी जब दूसरे देश के साथ मुकाबला करने का मौका आया तब वहाँ गो-मांस भक्षण को स्थान मिला । सो, यदि आसुरी मत से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीजों का सेवन करना होगा ।

परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है । जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है तब अपने आप पर मै तरस खाता हूँ । इस अभिनन्दन-पत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है । सो, मुझे

कहना चाहिए कि जिन्होने इस अभिनन्दन-पत्र का मजमून तैयार किया है उन्हे पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी किस चीज का नाम है। जिसके बाल-बच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी बुखार आता है, न कभी सिर दर्द होता है, न कभी खांसी होती है, न कभी अपेंडिसाइटिज होता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि नारगी का बीज ऑत में रह जाने से भी अपेंडिसाइटिज होता है। परन्तु जो शरीर स्वच्छ और नीरोगी हो उसमें ये बीज टिकेंगे कैसे? जब ऑतें शिथिल पड जाती हैं तब वे ऐसी चीजों को अपने आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी ऑतें शिथिल हो गई होगी। इसीसे मै ऐसी कोई चीज हजम न कर सका हूँगा। बच्चा ऐसी अनेक चीजें खा जाता है। माता इसका कहॉ ध्यान रखती है? पर उसकी ऑतो मे इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसलिए में चाहता हूँ कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोप करके कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचारी का तेज तो मुझसे अनेक गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हॉ, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभव की कुछ बूँदें पेश की हैं, जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताती हैं। ब्रह्मचर्य-पालन का अर्थ यह नही कि मै किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ, अपनी बहन का स्पर्श न करूँ। पर ब्रह्मचारी बनने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से भी मुझ मे किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह एक कागज को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्य

के कारण मुझे हिचकना पडे तो वह ब्रह्मचर्य कौडी काम का नहीं। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं उसीका अनुभव जब हम किसी सुन्दरी से सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हो कि बालक वैसे ब्रह्मचर्य को प्राप्त करें, तो इसका अभ्यास क्रम आप नही बना सकते, मुझ जैसा अधूरा भी क्यो न हो पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्यासाश्रम से भी बढ कर है। पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगडा है, वानप्रस्थाश्रम भी बिगडा है और सन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। हमारी ऐसी असह्य अवस्था हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुकरण करके तो आप पॉच सौ वर्षो के बाद भी पठानो का मुकाबला न कर सकेंगे। दैवी मार्ग का अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानो का मुकाबला हो सकता है। क्योंकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्तन एक क्षण में हो सकता है। पर शारीरिक परिवर्तन करते हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी मार्ग का अनुकरण तभी हमसे होगा जब हमारे पल्ले पूर्वजन्म का पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेंगे।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य के बारे मे कुछ लिखना आसान नहीं है। परन्तु मेरा निजी अनुभव इतना विशाल है कि उसकी कुछ बूँदें पाठकों को अर्पण करने की इच्छा बनी ही रहती है। इसके अलावा मेरे पास आये हुए कितने ही पत्रों ने इस इच्छा को और भी अधिक बढ़ा दिया है।

एक सज्जन पूछते हैं—ब्रह्मचर्य के मानी क्या है? क्या उसका सोलहों आने पालन करना शक्य है? यदि शक्य हो तो क्या आप उसका वैसा पालन करते हैं?

ब्रह्मचर्य का पूरा वास्तविक अर्थ है, ब्रह्म की खोज। ब्रह्म सब मे व्याप्त है। अतएव उसकी खोज अन्तर्ध्यान और

उससे उत्पन्न होनेवाले अन्तर्ज्ञान से होती है। यह अन्तर्ज्ञान इन्द्रियों के पूर्ण सयम के बिना नहीं हो सकता। इसलिए सभी इन्द्रियो का तन, मन, और वचन से सब समय और सब क्षेत्रो में सयम करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

ऐसे ब्रह्मचर्य का पूर्ण-रूप से पालन करनेवाली स्त्री या पुरुष केवल निर्विकारी ही हो सकते हैं। ऐसे निर्विकारी स्त्री-पुरुष ईश्वर के नजदीक रहते हैं, वे ईश्वरवत् हैं।

इसमे मुझे तिलमात्र भी शका नहीं है कि ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन तन, मन, और वचन से करना सभव है। मुझे कहते हुए दुख होता है कि इस ब्रह्मचर्य की पूर्ण अवस्था को मैं अभी नहीं पहुँचा हूँ। वहाँ तक पहुँचने का मेरा प्रयत्न निरन्तर चलता रहता है। इसी देह से, इस स्थिति तक पहुँचने की आशा मैंने छोडी नहीं है। तन पर तो मैंने अपना काबू कर लिया है। जागृत अवस्था में मैं सावधान रह सकता हूँ। मैने वचन के सयम का पालन करना ठीक-ठीक सीखा है। विचार पर अभी मुझे बहुत कुछ काबू पैदा करना बाकी है। जिस समय जिस बात का विचार करना हो उस समय केवल एक उसीके आने के बदले दूसरे विचार भी आया करते हैं। इससे विचारों में परस्पर द्वन्द्व-युद्ध हुआ करता है।

फिर भी जागृत अवस्था मे मैं विचारों को परस्पर टक्कर लेने से रोक सकता हूँ। मेरी यह स्थिति कही जा सकती है कि गन्दे विचार तो आ ही नहीं सकते। परन्तु निद्रावस्था में विचारो पर मेरा काबू कम रहता है। नींद मे अनेक प्रकार के विचार आते है, अकल्पित सपने भी आते ही रहते हैं और कभी-सभी इसी देह की की हुई बातों की वासना भी जागृत हो उठती

है। वे विचार जब गन्दे होते हैं तब स्वप्न-दोष भी होता है। यह स्थिति विकारी जीवन की ही हो सकती है।

मेरे विचार के विकार क्षीण होते जा रहे हैं किन्तु, उनका नाश नहीं हो पाया है। यदि मैं विचारों पर भी अपना साम्राज्य स्थापित कर सका होता तो पिछले दस बरसों में मुझे जो तीन कठिन बीमारियाँ हुईं—पसली का दर्द, पेचिश और अपेंडिसाइटिज—वे कभी न होतीं। मैं मानता हूँ कि नीरोगी आत्मा का शरीर भी नीरोगी ही होता है। अर्थात् ज्यों-ज्यों आत्मा नीरोग—निर्विकार—होती जाती है, त्यों-त्यों शरीर भी नीरोगी होता जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नीरोगी शरीर के मानी बलवान् शरीर ही हों। बलवान् आत्मा क्षीण शरीर भी में वास करती है—ज्यों-ज्यों आत्म-बल बढता है त्यों-त्यों शरीर-क्षीणता बढती जाती है। पूर्ण नीरोग शरीर भी बहुत क्षीण हो सकता है।

बलवान् शरीर में बहुत करके रोग तो रहते ही हैं। अगर रोग न भी हों तोभी वह शरीर सक्रामक रोगों का शिकार तुरन्त हो जाता है, परन्तु पूर्ण नीरोग शरीर पर सक्रामक रोगों की छूत का कोई असर नहीं पड सकता। शुद्ध खून में ऐसे कीडों को दूर रखने का गुण होता है।

ऐसी अद्भुत दशा दुर्लभ तो है ही। नहीं तो अब-तक मैं वहाँ तक पहुँच गया होता। क्योंकि मेरी आत्मा साक्षी देती है कि ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए जिन उपायो का अवलबन करने की आवश्यकता है, उनसे मैं मुँह मोडनेवाला नही हूँ। ऐसी कोई भी बाह्य वस्तु नही है जो मुझे उनसे दूर रखने मे समर्थ हो। परन्तु पिछले सस्कारों को धो बहाना

सबके लिए सरल नही होता है। इसलिए गो कि देर हो रही है मगर तो भी मैं जरा भी हिम्मत नहीं हार बैठा हूँ, क्योंकि मै निर्विकार अवस्था की कल्पना कर सकता हूँ। उसकी धुँधली झलक भी कभी-कभी देख सकता हूँ और जो प्रगति मैंने अब-तक की है वह मुझे निराश करने के बदले मुझमे आशा ही भरती है। फिर भी यदि मेरी आशा पूर्ण हुए बिना ही मेरा शरीर-पात हो जाय तोभी मैं अपने को निष्फल हुआ न मानूँगा। जितना विश्वास मुझे इस देह के अस्तित्त्व पर है उतना ही पुनर्जन्म पर भी है। इसलिए मै जानता हूँ कि थोडा-सा प्रयत्न भी कभी व्यर्थ नहीं जाता।

आत्मानुभव का इतना वर्णन करने का कारण यही है कि इससे जिन लोगो ने मुझे पत्र लिखे हैं उनको तथा उनके सदृश दूसरो को धीरज रहे और उनका आत्म-विश्वास बढे। सबकी आत्मा एक है। सबकी आत्मा की शक्ति एक-सी है। कई एक लोगो की शक्ति प्रकट हो चुकी है—दूसरो की प्रकट होने को बाकी है। प्रयत्न करने से उन्हें भी वह अनुभव जरूर ही मिलेगा।

यहाँ तक मैंने व्यापक अर्थ में ब्रह्मचर्य का विवेचन किया। ब्रह्मचर्य का लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो केवल विषयेन्द्रिय का ही मन, वचन, और काया के द्वारा सयम माना जाता है। यह अर्थ वास्तविक है। क्योकि उसका पालन करना बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रिय के सयम पर उतना जोर नही दिया गया है। इससे विषयेन्द्रिय-का सयम इतना मुश्किल बन गया है—लगभग अशक्य हो गया है। फिर जो शरीर रोग से अशक्त हो गया है उसमें विषय-वासना हमेशा अधिक रहती है।

यह वैद्यो का अनुभव है । इसलिए भी हमारे रोग-ग्रस्त समाज को ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन जान पडता है ।

ऊपर मैं क्षीण किन्तु नीरोगी शरीर के विषय मे लिख आया हूं । कोई उसका अर्थ यह न लगावे कि शरीर-बल वढाना ही नही चाहिए । मैंने तो सूक्ष्म-तम ब्रह्मचर्य की वात अपनी अति प्राकृत भाषा मे लिखी है ।

उससे शायद गलतफहमी होवे । जो सव इन्द्रियो के पूर्ण संयम का पालन करना चाहता है उसे अन्त मे शरीर-क्षीणता का अभिनन्दन करना ही पडेगा । जव शरीर का मोह और ममत्त्व क्षीण हो जाय तव शरीर-वल की इच्छा रही नहीं सकती । परन्तु विषयेन्द्रिय को जीतनेवाले ब्रह्मचारी का शरीर अति तेजस्वी और वलवान होना चाहिए । यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक है । जिसकी विषयेन्द्रिय को स्वप्नावस्था मे भी विकार न हो वह जगद्वन्दनीय है । इसमे कोई शक नही कि उसके लिए दूसरे सयम सहज वात हैं ।

इस ब्रह्मचर्य के सम्वन्ध मे एक दूसरे महाशय लिखते है—
"मेरी स्थिति दया जनक है । दफ्तर में, रास्ते मे, रात को, पढते समय, काम करते हुए, ईश्वर का नाम लेते हुए भी वही विचार आते रहते है । मन के विचार किस तरह कावू मे रक्खे जायँ ? स्त्री-मात्र के प्रति मातृ-भाव कैसे उत्पन्न हो ? आँख से शुद्ध वात्सल्य की ही किरणे किस प्रकार निकले ? दुष्ट विचार किस प्रकार निर्मूल हो ? ब्रह्मचर्य-विपयक आपका लेख मैंने अपने पास रख छोडा है, परन्तु इस जगह उससे जरा भी लाभ नहीं होता है ।"

यह स्थिति हृदय-द्रावक है । वहुतो की यह स्थिति होती है । परन्तु जवतक मन उन विचारो के साथ लडता रहता है

तबतक भय करने का कोई कारण नहीं है। आँख यदि दोष करती हो तो उसे बद कर लेना चाहिए, कान यदि दोष करें तो उनमें रुई भर लेनी चाहिए। आँख को हमेशा नीची रख कर चलने की रीति हितकर है। इससे उसे दूसरी बातें देखने की फुर्सत ही नहीं मिलती। जहाँ गन्दी बातें होती हों अथवा गन्दे गीत गाये जा रहे हों वहाँ से उठकर भाग जाना चाहिए। स्वादेन्द्रिय पर खूब काबू पैदा करना चाहिए।

मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वाद नहीं जीता वह विषय को नहीं जीत सकता। स्वाद को जीतना बहुत कठिन है। परन्तु यह विजय मिलने के साथ ही दूसरे विजय की सम्भावना है। स्वाद को जीतने के लिए एक नियम तो यह है कि मसालों का सर्वथा अथवा जितना हो सके उतना त्याग करना चाहिए। और दूसरा अधिक जोरदार तरीका यह है कि इस भावना की वृद्धि हमेशा की जाय कि हम स्वाद के लिए नहीं वल्कि केवल शरीर-रक्षा भर के लिए भोजन करते हैं। हम स्वाद के लिए हवा नहीं लेते, वल्कि श्वास लेने के लिए लेते है। पानी हम केवल प्यास बुझाने के लिए पीते हैं। इसी प्रकार खाना भी महज भूख बुझाने के लिए ही खाना चाहिए। हमारे माँ-बाप लडकपन से ही हमें इसकी उलटी आदत डलवाते है। हमारे पोषण के लिए नहीं वल्कि अपना दुलार दिखाने के लिए हमें तरह-तरह के स्वाद चखा कर हमें बिगाडते है। हमें ऐसे वायुमण्डल का विरोध करना होगा।

परन्तु विषय को जीतने का सुवर्ण-नियम तो राम-नाम अथवा कोई दूसरा ऐसा मन्त्र है। द्वादश मत्र भी यही काम देता है। जिसकी जैसी भावना हो वह वैसे ही मन्त्र का जाप करे।

मुझे लडकपन से राम-नाम सिखाया गया । मुझे उसका सहारा बरावर मिलता रहता है। इसलिए मैंने उसे सुझाया है। जो मन्त्र हम जपें उसमे हमें तल्लीन हो जाना चाहिए। भले ही मन्त्र जपते समय दूसरे विचार आया करें, मगर तो भी जो श्रद्धा रखकर मन्त्र का जप करता रहेगा उसे अन्त में सफलता अवश्य प्राप्त होगी। मुझे इसमें रत्तीभर भी शक नहीं है। यह मन्त्र उसके जीवन का आधार बनेगा और उसे तमाम संकटों से बचावेगा। ऐसे पवित्र मन्त्रों का उपयोग किसीको आर्थिक लाभ के लिए हरगिज नहीं करना चाहिए। इन मन्त्रों का चमत्कार हमारी नीति को सुरक्षित रखने में है। और यह अनुभव प्रत्येक साधक को थोडे ही समय में मिल जायगा। हॉ, इतना याद रखना चाहिए कि इन मन्त्रों को तोते की तरह रटने से कुछ भी नहीं होगा। उसमें अपनी आत्मा लगा देनी चाहिए। तोते तो यन्त्र की तरह ऐसे मन्त्र पढते रहते हैं। हमें उन्हें ज्ञान-पूर्वक पढना चाहिए — अवाञ्छनीय विचारों का निवारण करने की भावना रखकर और ऐसा कर सकने की मन्त्र की शक्ति में विश्वास रखकर पढना चाहिए।

मनोवृत्तियों का प्रभाव

एक सज्जन लिखते हैं

"य इ मे सन्तान-निग्रह पर आपने जो लेख लिखे हैं, उनको मैं बडी दिलचस्पी से पढता रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि आपने जे० ए० हैडफील्ड की "साइकॉलॉजी एण्ड मॉरल्स" नामक पुस्तक पढी होगी। मैं आपका ध्यान उस पुस्तक के निम्न लिखित उद्धरण की ओर दिलाना चाहता हूँ —

"'विषयभोग स्वेच्छाचार उस हालत में कहलाता है जब कि यह प्रवृत्ति नीति की विरोधी मानी जाती हो और विषयभोग को निर्दोष आनन्द तब माना जाता है जब कि इस प्रवृत्ति को प्रेम का चिन्ह माना जाय। विषय-वासना का इस प्रकार व्यक्त

होना दाम्पत्य प्रेम को वस्तुत· गाढा बनाता है, न कि उसे नष्ट करता है। लेकिन एक ओर तो मनमाना सम्भोग करने से और दूसरी ओर सम्भोग के विचार को तुच्छ सुख मानने के भ्रम मे पड कर उससे परहेज करने से अकसर अशान्ति पैदा होती है और प्रेम कम पड जाता है।' यानी लेखक की समझ मे सम्भोग से सन्तानोत्पत्ति तो होती ही है, इसके अलावा उसमे दाम्पत्य प्रेम को बढाने का धार्मिक गुण भी रहता है।

"अगर लेखक की यह बात सच है तो मुझे आश्चर्य है कि आप अपने इस सिद्धान्त का समर्थन किस प्रकार कर सकते हैं कि सन्तान पैदा करने की मशा से किया हुआ सम्भोग ही उचित है—अन्यथा नही। मेरा तो निजी खयाल यह है कि लेखक की उपर्युक्त बात बिलकुल सच है, क्योकि महज यही नहीं कि वह प्रसिद्ध मानसशास्त्रवेत्ता हैं, बल्कि मुझे खुद ऐसे मामले मालूम हैं, जिनमें शरीर-सग के द्वारा प्रेम को व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा को रोकने की कोशिश करने से ही दाम्पत्य जीवन नीरस या नष्ट हो गया है।

"अच्छा यह उदाहरण लीजिए, एक युवक और एक युवती एक दूसरे के साथ प्रेम करते हैं और उनका यह करना सुन्दर तथा ईश्वर-कृत व्यवस्था का एक अग है। परन्तु उनके पास अपने बच्चे को तालीम देने के लिए काफी धन नहीं है (और मैं समझता हूँ कि आप इससे सहमत हैं कि तालीम वगैरह देने की हैसियत न रखते हुए सन्तान पैदा करना पाप है), या यह समझ लीजिए कि सन्तान पैदा करना स्त्री की तन्दुरुस्ती के लिए हानिकारक होगा या यह कि उसे पहले ही बहुत से बच्चे हो चुके हैं।

"आपके कथनानुसार तो इस दम्पति के आगे केवल दो ही रास्ते हैं. या तो वे विवाह कर के अलग-अलग रहें—लेकिन अगर ऐसा होगा तो हैडफील्ड की उपर्युक्त दलील के मुताबिक वेचैनी पैदा होगी, जिससे उनके वीच मुहब्बत का खात्मा हो जायगा—या वे विवाह ही न करें, लेकिन इस सूरत मे भी मुहब्बत तो जाती ही रहेगी। इसका कारण यह है कि प्रकृति तो मनुष्य-कृत योजनाओं की अवहेलना ही किया करती है। हॉ, यह वेशक हो सकता है कि वे एक दूसरे से जुदा हो जावें, लेकिन इस अलाहदगी में भी उनके मन मे विकार तो उठते रहेंगे। और अगर सामाजिक व्यवस्था ऐसी वदल दी जाय जिसमे सब लोगों के लिए उतने ही वच्चों का पालन करना मुमकिन हो जितने वे पैदा कर सकें, तो भी समाज को अतिशय सन्तानोत्पत्ति का और हरएक औरत को हद से ज्यादा सन्तान उत्पन्न करने का खतरा तो वना ही रहता है। इसकी वजह यह है कि मर्द अपने को वहुत ज्यादा रोके रहता हुआ भी साल मे एक वच्चा तो पैदा कर ही लेगा। आपको या तो ब्रह्मचर्य का समर्थन करना चाहिए या सन्तान निग्रह का, क्योंकि वक्तन्-फ-वक्तन् किये हुए सम्भोग का नतीजा यह हो सकता है कि (जैसा कभी-कभी पादरियों में हुआ करता है) औरत, ईश्वर की मर्जी के नाम पर मर्द के द्वारा पैदा किया हुआ एक वच्चा हर साल जनन करने की वजह से मर जाय।

"जिसे आप आत्म-सयम कहते हैं, वह प्रकृति के काम में उतना ही वडा हस्तक्षेप है—वल्कि हकीकतन ज्यादा—जितना कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम साधन हैं। सभव है, पुरुष इन साधनों की मदद से विषय-भोग में अतिशयता

करे, परन्तु उससे सन्तति की पैदाइश तो रुक जायगी और अन्त मे इसका दु ख उन्हींको भोगना होगा — अन्य किसी को नहीं। इसके विपरीत जो लोग इन साधनों का उपयोग नही करते, वे भी अतिशयता के दोष से कदापि मुक्त नहीं हैं, और उनके पाप का फल केवल उन्हीं को नहीं, किन्तु उनकी सन्तति को भी, जिनकी पैदाइश को वे रोक नही सकते हैं, भोगना पडता है। इग्लैण्ड में आजकल खानों के मालिकों और मजदूरों के बीच जो झगडा चल रहा है, उसमें खानो के मालिकों की विजय निश्चित है। इसका कारण यह है कि खानों के मजदूर बहुत बडी तादाद मे हैं। और सन्तानोत्पत्ति की निरकुशता से बेचारे बच्चो का ही बिगाड नहीं होता, बल्कि समस्त मानव-जाति का होता ह।"

इस पत्र मे मनोवृत्तियों तथा उनके प्रभाव का खासा परिचय मिलता है। जब मनुष्य का दिमाग रस्सी को साँप समझ लेता है, तब उस विचार के कारण वह पीला पड जाता है, और या तो वहाँ से भागता है या उस कल्पित साँप को मार डालने की गरज से लाठी उठाता है। दूसरा आदमी पर स्त्री को अपनी पत्नी मान बैठता है और उसके मन में पशु-वृत्ति उत्पन्न होने लगती है। जिस क्षण वह उसे पहचान कर अपनी यह भूल जान लेता है, उसी क्षण उसका वह विकार ठण्डा पड जाता है।

यही बात उस सम्बन्ध में भी मान ली जाय, जिसका जिक्र पत्र-लेखक ने ऊपर किया है। जैसा कि सभव है सम्भोग की इच्छा को तुच्छ मानने के भ्रम मे पडकर उससे परहेज करने से प्राय. अशान्ति उत्पन्न हो और प्रेम मे कमी

आ जाय — यह एक मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। लेकिन अगर सयम, प्रेम-बन्धन को अधिक दृढ बनाने के लिए रक्खा जाय, प्रेम को शुद्ध बनाने के लिए तथा एक अधिक अच्छे काम के लिए वीर्य का सचय करने के अभिप्राय से किया जाय तो वह अशान्ति के स्थान पर शान्ति ही बढ़ावेगा और प्रेम-गाँठ को ढीली न करके उलटे उसे मजबूत ही बनावेगा। यह दूसरी मनोवृत्ति का प्रभाव हुआ। जिस प्रेम का आधार पशुवृत्ति की तृप्ति है, वह आखिर स्वार्थ ही है और थोड़े-से दबाव से भी वह ठण्डा पड सकता है। फिर, जब पशु-पक्षियों की सम्भोग-तृप्ति का कोई आध्यात्मिक स्वरूप नहीं है तब मनुष्यों में ही होनेवाली सम्भोग-तृप्ति को आध्यात्मिक स्वरूप क्यों दिया जाय? जो चीज जैसी है उसे हम वैसी ही क्यों न देखें? यह तो वश को कायम रखने के लिए एक ऐसी क्रिया है जिसकी ओर हम सब बलात्कार खींचे जाते हैं। हाँ, लेकिन मनुष्य अपवाद स्वरूप है, क्योंकि वह एक ऐसा प्राणी है जिसको ईश्वर ने मर्यादित स्वतन्त्र इच्छा दी है और इसके बल से वह जाति-उन्नति के लिए और पशुओं की अपेक्षा उच्चतर आदर्श की पूर्ति के लिए, जिसके लिए वह ससार मे आया है, इन्द्रिय-सयम करने की क्षमता रखता है। सस्कारवशात् ही हम यों मानते है कि सन्तानोत्पत्ति के कारण के सिवा भी स्त्री-प्रसग आवश्यक और प्रेम की वृद्धि के लिए इष्ट है। बहुतो का अनुभव यह है कि सतानोत्पादन की इच्छा के बिना केवल भोग के ही लिए किया हुआ स्त्री-प्रसग प्रेम को न तो बढाता है और न उसको बनाये रखने के लिए या उसको शुद्ध करने के लिए ही आवश्यक है। अलबत्ता, ऐसे भी उदाहरण अवश्य दिये जा सकते हैं कि

जिनमें इन्द्रिय-निग्रह से प्रेम और भी दृढ़ हो गया है। हाँ, इसमें कोई शक नहीं है कि यह आत्म निग्रह पति और पत्नी को पारस्परिक आत्म उन्नति के लिए स्वेच्छा से करना चाहिए।

मानव-समाज तो लगातार उन्नति करती जानेवाली या आध्यात्मिक विकास करनेवाली चीज है। यदि मानव-समाज इस तरह ऊर्ध्वगामी है तो उसका आधार शारीरिक हाजतों पर दिनो-दिन अधिकाधिक अंकुश रखने पर निर्भर होना चाहिए। इस प्रकार विवाह को तो एक ऐसी धर्म-ग्रंथि समझना चाहिए जो कि पति और पत्नी दोनों पर अनुशासन करे और उनपर यह कैद लाजिमी कर दे कि वे सदा अपने ही बीच में इन्द्रिय-भोग करेंगे, और सो भी केवल सतति-जनन की गर्ज से और उसी हालत में जब कि वे दोनों उसके लिए तैयार और इच्छुक हों। तब तो उक्त पत्र की दोनों बातों में प्रजोत्पादन की इच्छा को छोड़ कर इंद्रिय-भोग का और कोई प्रश्न उठना ही नहीं है।

जिस प्रकार उक्त लेखक सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी स्त्री-संग को आवश्यक बतलाता है, उसी प्रकार अगर हम भी प्रारम्भ करें, तो तर्क के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता है। परन्तु संसार के हरएक हिस्से में चन्द उत्तम पुरुषों के सम्पूर्ण संयम के दृष्टान्तों की मौजूदगी में उक्त सिद्धान्त को कोई जगह नहीं है। यह कहना कि ऐसा संयम अधिकांश मानव-समाज के लिये कठिन है, संयम की शक्यता और इष्टता के विरुद्ध कोई दलील नहीं हो सकता। सौ वर्ष पहले अधिकांश मनुष्यों के लिए जो शक्य नहीं था वह आज शक्य पाया गया

है। और असीम उन्नति करने के निमित्त हमारे सामने पड़े हुए काल के चक्र में १०० वर्ष की बिसात ही क्या? अगर वैज्ञानिकों का अनुमान सत्य है तो अभी कल ही तो हमको आदमी का चोला मिला था। उसकी मर्यादा को कौन जानता है? और किसमें हिम्मत है कि कोई उसकी मर्यादा को स्थिर कर सके? निस्सन्देह हम नित्य ही भला या बुरा करने की निःसीम शक्ति उसमें पाते रहते है।

अगर संयम की शक्यता और इष्टता मान ली जाय, तो हमको उसे करने के लायक बनने के साधनों को ढूंढ निकालने की कोशिश करनी चाहिए। और, जैसा कि मैं अपने किसी पिछले लेख में लिख चुका हूँ, अगर हम संयम से रहना चाहते हों तो हमें अपना जीवन-क्रम बदलना ही पड़ेगा। लड्डू हाथ में रहे और पेट में भी चला जाय — यह कैसे हो सकता है? अगर हम जननेन्द्रिय का संयमन करना चाहते है तो हमको अन्य सभी इन्द्रियों का संयम भी करना ही होगा। अगर हाथ, पैर, नाक, कान, ऑख इत्यादि की लगाम ढीली कर दी जाय तो जननेन्द्रिय का संयम असम्भव है। अशान्ति, चिड़चिड़ापन, हिस्टीरिया, सिड़ीपन आदि, जिसके लिए लोग ब्रह्मचर्य का पालन करने के प्रयत्न को दोषी ठहराते हैं दर असल अन्त में अन्य इन्द्रियों के ही असंयम का फल सिद्ध होंगे। कोई भी पाप और प्राकृतिक नियमों का कोई भी उल्लंघन करके कोई आदमी दंड से बच नहीं सकता।

मैं शब्दों के लिए झगड़ना नहीं चाहता। अगर आत्म-संयम भी प्रकृति के नियमों का ठीक वैसा ही उल्लंघन है, जैसे कि गर्भाधान को रोकने के कृत्रिम उपाय हैं, तो भले

ऐसा कहा जाय। लेकिन मेरा खयाल तब भी यही बना रहेगा कि इनमे यह उल्लघन कर्तव्य है और इष्ट है, क्योंकि इनमे व्यक्ति की तथा समाज की उन्नति होती है और इसके विपरीत दूसरे से उन दोनो का पतन होता है। सतति-निग्रह का एक ही सच्चा रास्ता है, ब्रह्मचर्य। और स्त्री-प्रसग के बाद सतति-वृद्धि रोकने के कृत्रिम साधनो के प्रयोग से मनुष्य-जाति का नाश ही होगा।

अन्त मे, यदि खानों के मालिक गलत रास्ते पर होते हुए भी विजयी होगे, तो इसलिए नही कि मजदूरो मे सतति की संख्या बहुत बढ गई है, बल्कि इसलिए कि मजदूरो ने एक भी इद्रियो के सयम का पाठ नही सीखा है। अगर इन लोगो के बच्चे न होते तो इन्हें न तो तरक्की करने के लिए उत्साह ही होता और न तब उनके पास वेतन-वृद्धि मॅागने के लिए कोई कारण ही होता। क्या शराब पीने, जुआ खेलने या तमाखू पीये बिना उनका काम नही चल सकता? क्या यही कोई माकूल जवाब हो जायगा कि खदानो के मालिक इन्हीं दोषो मे लिप्त रहते हुए भी उनके ऊपर हावी है? अगर मजदूर लोग पूजीपतियो से बेहतर होने का दावा नही कर सकते तो उनको जगत की सहानुभूति मॅागने का अधिकार ही क्या है? क्या इसीलिए कि पूजीपतियो की सख्या बढे और पूजीवाद का हाथ मजबूत हो? हमे यह आशा दे कर प्रजावाद की दुहाई देने को कहा जाता है कि जब वह ससार मे स्थापित हो जायगा, तब हमे अच्छे दिन देखने को मिलेंगे। इसलिए हमे लाजिम है कि हम स्वयं उन्हीं बुराइयो का प्रचार आप ही न करें, जिनका इल्जाम हम पूजीपतियो तथा सपत्तिवाद पर लगाया करते हैं।

मुझे दुःख के साथ यह बात मालूम है कि आत्म-संयम आसानी से नहीं किया जा सकता। लेकिन इसकी धीमी गति से हमें घबराना न चाहिए। जल्दबाजी से कुछ हासिल नहीं होता। अधैर्य से जन-साधारण में या मजदूरों में अत्यधिक सन्तानोत्पत्ति की बुराई बन्द न हो जायगी। मजदूरों के सेवकों के सामने बड़ा भारी काम पड़ा है। उनको संयम का वह पाठ अपने जीवन-क्रम से निकाल न देना चाहिए जो कि मानव-जाति के बड़े से बड़े शिक्षकों ने अपने अमूल्य अनुभव से हमको पढ़ाया है। जिन मूलाधार सिद्धान्तों की विरासत उन्होंने हमें दी है, उनकी परीक्षा आधुनिक प्रयोगशालाओं से कहीं अधिक संपन्न प्रयोगशाला में की गई थी। उनमें सब किसी ने हमें आत्म संयम की ही शिक्षा दी है।

धर्म-संकट

"मैं ३० वर्ष का विवाहित पुरुष हूँ। मेरी धर्मपत्नी की भी प्राय यही उम्र है। हमे पाच सन्ताने हुई, जिनमे सौभाग्य से दो तो मर गई है। मै अपने शेप बच्चो के प्रति अपनी जिम्मेवारी को जानता हूँ। मगर उस उत्तरदायित्व को पूरा करना अगर असभव नहीं तो मै बहुत मुश्किल जरूर पाता हूँ। आपने आत्म-सयम की सलाह दी है। खैर, मैं पिछले तीन वर्षो से उसका पालन करता आ रहा हूँ मगर अपनी सहधर्मिणी की इच्छाओ के बहुत ही विरुद्ध। वह तो उसी वस्तु को माँगती है जिसे आम लोग जिन्दगी का मजा कहते है। आप इतने ऊचे पर बैठकर भले ही इसे पाप कह सकते है। मगर वह तो इस विषय पर आपकी इस दृष्टि से विचार नही करती। और न उसे और अधिक बच्चे पैदा करने का ही डर है। उसे उत्तदायित्त्व का वह खयाल नही है, जिसके मुझ मे होने का विश्वास कर मै अपने को बडभागी मानता हूँ। मेरे माता-पिता मेरे बनिस्वत मेरी पत्नी का ही अधिक साथ देते हैं और रोज ही घर मे दाँता-किलकिल मची रहती है। कामेच्छा की पूत्ति न होने से मेरी स्त्री का स्वभाव इतना चिडचिडा और क्रोधी होगया है कि वह जरा-जरा-सी बात पर उबल पडती है। अब मेरे सामने सवाल यह है कि मै इस कठिनाई को हल कैसे करूँ? मेरी शक्ति के बाहर मुझे लडके-बाले है। उनका पालन करने लायक धन मेरे पास नही है। पत्नी को समझा सकना बिलकुल असभव-सा जान पडता है। अगर उसकी कामेच्छा पूरी न की जाय तो यह भय है कि वह कही चली

जाय या पगली हो जाय या शायद कहीं आत्म-हत्या कर बैठे। मैं आपसे कहता हूँ कि अगर इस देश का कानून मुझे इजाजत देता तो मैं उसी तरह सभी अनचाहे लडको को गोली मार देता, जिस तरह कि आप लावारिस कुत्तो को मरवाते। गत तीन महीनों से मुझे दिन-रात मे दो जून खाना नसीब नहीं हुआ है, नाश्ता या जलपान भी मयस्सर नही हुआ है। मेरे सिर ऐसे काम धन्धे भी पडे हुए हैं कि जिनसे मैं लगातार कई दिनो तक उपवास भी नही कर सकता। पत्नी मुझ से कुछ सहानुभूति रखती नहीं, क्योंकि वह मुझे सब्ती या पागल-सा समझती है। सतति-निग्रह के साहित्य से मै परिचित हूँ। वह साहित्य बहुत लुभावने तरीके से लिखा गया है। और मैंने आत्म-सयम पर आपकी भी किताब पढी है। मैं तो यहाँ वाघ और मगर के वीच मे पडा हूँ।"

मैं पत्र लेखक को कई साल से जानता हूँ। वे युवक हैं। उन्होने अपना पूरा नाम-ठाम पत्र मे दिया है। उनके पत्र का सही साराश ऊपर दिया गया है। अपना नाम देते हुए वे डरते थे। इसलिए वे लिखते हैं कि, 'य इ' मे चर्चा की जा सकने की आशा से उन्होने मेरे पास दो गुमनाम पत्र लिखे थे। इस तरह के इतने अधिक गुमनाम पत्र मेरे पास आते रहते हैं कि मै उनपर चर्चा करने मे हिचकता हूँ। उसी तरह इस पत्र पर भी चर्चा करने मे मुझे बहुत झिझक है, गो मैं जानता हूँ कि यह पत्र सच्चा है और प्रयत्नशील पुरुष का लिखा हुआ है। यह विषय ही इतना नाजुक है। मगर मैं तो दावा करता हू कि ऐसे मुआमलों का मुझे काफी अनुभव है। ऐसा दावा करते हुए और खास कर इसलिए कि कई ऐसे ही

मुआमलों में मेरे तरीके से लोगो को राहत मिली है, मै इस स्पष्ट कर्त्तव्य के पालन से दिल नही चुरा सकता।

जहॉ तक ॲग्रेजी पढे-लिखे लोगो से सबध है, यहॉ की स्थिति दुगुनी मुश्किल है। सामाजिक योग्यता की दृष्टि से पति पत्नी के बीच इतना बडा अन्तर होता है कि जिसे मिटाना असभव है। कुछ नौजवान यह सोचते हुए जान पडते हैं कि अपनी पत्नियो की पर्वा न करने मे ही हमने यह सवाल हल कर लिया है, गोकि उन्हें बखूब पता है कि उनकी बिरादरी मे तलाक सभव नही है और इसलिए उनकी पत्नियॉ पुनर्विवाह नही कर सकती। और तो भी दूसरे लोग—और इन्ही की सख्या बहुत ज्यादा है—अपनी पत्नियो को केवल मजा लूटने का साधन बनाते है और उन्हे अपने मानसिक जीवन मे हिस्सा नहीं देते। बहुत ही थोडे लोग ऐसे हैं जिनका अतःकरण जागृत हुआ है—मगर उनकी सख्या दिनोदिन बढती जा रही है। उनके सामने भी वैसी ही नैतिक समस्या आ खडी हुई है जैसी कि मेरे पत्र-लेखक के सामने है।

मेरी सम्मति मे सभोग को अगर उचित या नियमानुकूल मानना है तो उसकी इजाजत तभी दी जा सकती है जब कि दोनो पक्ष उसकी चाहना करें। पति के पत्नी से या पत्नी के पति से अपनी कामेच्छा की पूर्ति जबरन कराने के अधिकार को मैं नहीं मानता। और अगर इस मुआमले मे मेरी स्थिति सही है तो पति पर ऐसा कोई नैतिक दबाव नहीं है कि जिससे वह पत्नी की मॉगे पूरी करने को बाध्य हो। मगर यो इन्कार करने से ही पति पर और भी बडा भारी और ऊँचा उत्तर-दायित्व आ पडता है। वह अपने आपको बहुत बडा

साधक मानता हुआ अपनी पत्नी को हिकारत की नजर से नहीं देखेगा किन्तु नम्रता-पूर्वक इसे स्वीकार करेगा कि उसके लिए जो बात जरूरी नहीं है, वही उसकी पत्नी के लिए परमावश्यक वस्तु है । इसलिए वह उसके साथ अत्यत नम्रता का व्यवहार करेगा और अपनी पवित्रता में वह यह विश्वास रक्खेगा कि उसकी पत्नी की वासना को अत्यत ऊँचे प्रकार की शक्ति रूप मे वह बदल सकेगी । इसलिए उसे अपनी पत्नी का सच्चा मित्र, नायक और वैद्य बनना होगा । पत्नी मे उसे पूरा-पूरा विश्वास करना होगा, उससे कुछ भी छिपाना न होगा और अटूट धैर्य से उसे अपनी पत्नी को इस काम का नैतिक आधार समझाना पड़ेगा, यह बतलाना होगा कि पति-पत्नी के बीच सचमुच मे कैसा सबध होना चाहिए और विवाह का सच्चा अर्थ क्या है । यह काम करते हुए वह देखेगा कि पहले जो बहुत-सी बाते स्पष्ट नही थी अब स्पष्ट हो जायगी और अगर उसका अपना सयम सच्चा होगा तो वह अपनी पत्नी को अपने और भी निकट खीच लेगा ।

इस उदाहरण के बारे मे तो मुझे कहना ही पड़ेगा कि केवल और अधिक सतानोत्पादन से बचने की इच्छा ही पत्नी को सतुष्ट करने से इन्कार करने का काफी कारण नही है । महज बच्चो का भार उठाने के डर से पत्नी की प्रेम-याचना को अस्वीकार करना तो कायरता-सी लगता है । बेहिसाब सतानोत्पादन को रोकना दोनो पक्षो के अलग-अलग या साथ साथ अपनी काम-वासना पर लगाम लगाने का अच्छा कारण है, मगर दपती मे से एक के अपने सगी से एकत्र शयन का अधिकार छीन लेने का यह भरपूर कारण नही है ।

और आखिर बच्चों से इतनी घबराहट ही किस लिए हो? जरूर ही ईमानदार, परिश्रमी और बुद्धिमान् पुरुषो के लिए कई लडको का पालन कर सकने की कमाई करने की काफी गुंजायश तो है ही। मै कबूल करता हूँ कि मेरे पत्र-लेखक जैसे आदमी के लिए जो देश-सेवा मे अपना सारा समय लगाने की सच्ची कोशिश ईमानदारी से करता है, बडे और बढते हुए परिवार का पालन करना और साथ ही साथ देश की भी सेवा करनी, जिसकी करोडो भूखी सताते है, मुश्किल है। मैने इन पृष्ठो मे अकसर लिखा है कि जबतक भारतवर्ष गुलाम है, यहाँ बच्चे पैदा करना ही भूल है। मगर यह तो नवयुवको और युवतियो के विवाह ही न करने की बडी अच्छी वजह है एक के दूसरे को दाम्पत्य सहयोग न देने का काफी कारण नहीं है। हाँ, सहयोग न करना—सभोग न करना—भी उचित हो सकता है, बल्कि न करना ही धर्म हो जाता है, जब कि शुद्ध धर्म के नाम पर ब्रह्मचर्य-पालन की इच्छा अदम्य हो उठे। जब वह इच्छा सचमुच में पैदा हो जायगी, तब उसका बडा अच्छा प्रभाव दूसरे पर भी पडेगा। अगर मान लेवे कि समय पर उसका भला प्रभाव न भी पडा, तोभी जीवन-सगी के पागल हो जाने या मर जाने का जोखिम उठा कर भी ब्रह्मचर्य-पालन करना कर्त्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य के लिए भी वैसे ही वीरता-पूर्ण त्याग की जरूरत है जैसे कि सत्यता या देशोद्धार के लिए है। मैने ऊपर जो कुछ लिखा है, उसे दृष्टि मे रखते हुए यह कहने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती है कि कृत्रिम उपायो से सतानिग्रह करना अनैतिक है और मेरे तर्क के नीचे जीवन की जो भावना छिपी हुई है, उसमे इसे जगह नहीं है।

परिशिष्ट

जनन और प्रजनन

[' ओपन कोर्ट ' नामक एक अग्रेजी मासिक में लिखे श्री विलियम लोफ्टस हेयर के इस विषय के एक लेख का अनुवाद नीचे दिया है :]

प्राणि-शास्त्र में जनन

एक कोषीय जीवो की खुर्दबीन से जॉच करने पर पता चला है कि क्षुद्रतम जीवों मे वश-वृद्धि के लिए शरीरो के टुकडे अपने आप हो जाते हैं । पोषण पाने से ऐसे जीव के शरीर की वृद्धि होती जाती है और जब वह अपनी जाति के लिहाज से बडा से बडा हो जाता है तब उसके दो विभाग होने लगते है और धीरे-धीरे शरीर के ही दो टुकडे हो जाते हैं । साधारण सुविधायें यानी पानी और पोषण मिलते जाने पर मालूम होता है कि इन्हीं क्रियाओ मे उसका सारा जीवन समाप्त हो जाता है, मगर, वे सुविधायें न मिलने पर, कभी-कभी दो कोषो का एक मे मिलकर पुनर्यौवन होते हुए भी देखा जाता है, परन्तु उनके मिलन से सन्तानोत्पत्ति नही होती ।

बहु कोषीय जीवो मे भी पोषण और वृद्धि की क्रियायें नीचे के जीवो के समान ही चलती हैं, परन्तु एक और नई क्रिया देखने में आती है । शरीर के अलग-अलग कोषपुञ्जों के प्राय अलग-अलग काम होते हैं, कुछ पोषण प्राप्त करते हैं तो कुछ उसे बॉटने का काम करते हैं, कुछ गति के लिए हैं तो कुछ हिफाजत के लिए, जैसे कि चमडा । वे कोषपुञ्ज शरीर-विभजन की प्राथमिक क्रिया छोड देते हैं, जिन्हें कुछ नये काम मिलते हैं मगर कुछ कोषपुञ्जों के जिम्मे, जिन्हें शरीर में कुछ

और भीतरी जगह मिलती है वह काम बचा रहता है। दूसरे पुंज, जिनमें अदल-बदल हो चुकी है, इनकी हिफाजत और खिदमत करते हैं, मगर ये जैसे के तैसे ही बने रहते हैं। उनमे विभजन पहले जैसा ही होता है, मगर वह कोषीय शरीर के भीतर ही, और समय पा कर कुछ तो बाहर भी निकाल दिये जाते हैं। तथापि उन्हें एक नई शक्ति मिल जाती है। अपने पूर्वजों के समान दो टुकड़े हो जाने के बदले, उनके पुंजो का विभजन—या वृद्धि, अलग-अलग टुकड़े हुए बिना ही होती है। यह क्रिया तबतक चलती रहती है, जबतक वह प्राणी, अपनी जाति के लिहाज से पूर्णवृद्धि को नहीं पहुँच जाता। मगर उसके शरीर मे हम एक नई बात देख पाते हैं, वह यह कि मौलिक कीटाणुओं का काम केवल बाह्य जनन का ही नहीं रह जाता बल्कि, आन्तरिक कोषो की उत्पत्ति के लिए भी वे जहाँ कहीं जरूरत पड़ती है, कोष दिया करते हैं। इस प्रकार ये, किसी खास काम के लिए पहले ही से निश्चित न किये गये कोष, एक साथ ही दो काम करते हैं, यानी आन्तरिक प्रजनन या शरीर का विकास और बाह्य जनन या वंश-वृद्धि का काम। यहाँ हम प्रजनन और जनन इन दो क्रियाओं का अन्तर स्पष्ट समझ लें। एक और महत्वपूर्ण बात है। प्रजनन—आन्तरिक विकास—व्यक्ति के लिए परमावश्यक है और इसलिए आवश्यक और पहला काम है, जनन या वंश-विस्तार का काम तो कोषो की अधिकता होने से ही होगा और इसलिए दूसरा है, कम महत्व का है। शायद दोनों ही पोषण पर निर्भर रहते है क्योंकि अगर पोषण पूरा न मिले तो आन्तरिक विकास का काम ठीक न हो सकेगा और न कोषों की कसरत होगी, न वंश-विस्तार ही

होने की आवश्यकता या संभावना होगी । इसलिए जीवन का नियम यह है कि इस स्थिति मे पहले प्रजनन के लिए जीव-कोषो का पोषण किया जाय और तब कही जनन के लिए । अगर पोषण पूरा न हो सके तो उस पर पहला हक होगा प्रजनन का और जनन की क्रिया बन्द रखनी होगी । यो हम सन्तानोत्पत्ति की रोक के मूल का पता पा सकते हैं और इसी की पिछली स्थितियो, ब्रह्मचर्य और वैराग्य, तक प्राय जा सकते हैं । आन्तरिक प्रजनन की क्रिया कभी रुक नही सकती और उसके रुकने के मानी हैं, मृत्यु । और इसी प्रकार मौत की जड को भी हम देख पाते है ।

जीव-विद्या में प्रजनन

मनुष्यो और पशुओ मे लिङ्गभेद अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है और सामान्य नियम बन गया है । इन जीवो का विचार करने के पहले हमें बीच की स्थिति को देखना पडेगा यानी वह जो अलिङ्गिक स्थिति (एक कोपीय जीव) के बाद और द्वि-लिङ्गिक स्थिति के पहले की है । इसे उभय लिङ्गी का नाम दिया गया है क्योंकि इसमें नर और मादा, दोनो के गुण मौजूद होते है । अब भी कुछ ऐसे जीव हैं, जिनमे यह स्थिति देखने मे आती है । उनमें आन्तरिक कोषो की वृद्धि तो उसी तरह होती जाती है, मगर कुछ कोषो के शरीर से बिलकुल निकल जाने के बदले, वे एक अग से दूसरे अग में चले जाते हैं और वही उनका पोषण तबतक होता रहता है जबतक वे स्वतत्र जीवन के योग्य नहीं हो जाते ।

विकास का नियम यह मालूम पडता है कि ख्वाह एक कोपीय जीव हो या बहु कोषीय या उभय लिङ्गी, मगर सभी

दशाओ मे सतान का विकास वहाँ तक होते जाना सभव है, जहाँ तक कि उसके माता-पिता का, उसके पैदा होने के समय तक हो चुका था । इस तरह यह तो व्यक्ति की ही उन्नति हुई, जब कभी उसे सन्तान होती है, वह व्यक्ति ही, पहले से उच्चतर स्थिति मे पहुँचता है, या पहुँचता होगा, फलत उसकी सन्तान अपने माता-पिता के साधारण विकास को प्राप्त हो सकेगी । हर जाति और व्यक्ति के लिए जनन-शक्ति की अवधि अलग-अलग होगी, मगर आदर्श रूप मे तो वह यौवनावस्था से लेकर वृद्धावस्था के प्रारभ तक होती है । समय से पहले या वृद्धवस्था मे सन्तानोत्पत्ति होने से, सन्तान मे माता-पिता की निर्बलता उतर आयगी । यहाँ, हम तब, शारीरिक नियमो के अनुसार सभोग-नीति का एक नियम देख पाते है । वश-विस्तार और शरीर के आन्तरिक प्रजनन के लिहाज से सन्तानोत्पत्ति के लिए सबसे अधिक लाभकर समय केवल पूर्ण यौवन ही है ।

यहाँ एक बात ध्यान देने लायक है । उभय लिङ्गिक सृष्टि के साथ-साथ एक नई बात देखने मे आती है, वह यह है कि दोनो लिङ्गो के उसके अग सिर्फ अलग ही अलग नही रहते बल्कि स्वतत्र रूप से अपने-अपने शुक्रकोष बनाते जाते है । नर अग तो पुराना आन्तरिक जनन का काम, शुक्रकोषो को बना-बना कर करता ही जाता है (जिन्हें बाहर निकाल कर मादा-पिंड मे प्रवेश कराने के कारण वीर्यकीट कहते है), और मादा अग भी अपने जीवकोष बनाते ही जाते है, मगर पुरुष अग के जीवकोष को गर्भाधान के लिए रख लेते है, न कि निकाल देते है । हर हालत मे व्यक्ति के लिए, आन्तरिक प्रजनन प्राथमिक कार्य है और परमावश्यक है । गर्भाधान के बाद से हर क्षण मे जीव

का आन्तरिक प्रजनन होता रहता है। मनुष्य जाति में यौवनावस्था मे सतानोत्पत्ति हो सकती है, मगर सिर्फ जाति के लिए, उससे व्यक्ति को लाभ पहुँचना जरूरी नहीं है। नीची श्रेणियो के समान यहाँ भी अगर आन्तरिक प्रजनन की क्रिया रुक जाय, या ठीक-ठीक न चले तो बीमारी या मौत आवेगी। यहाँ भी जाति और व्यक्ति के हितो मे चढा-ऊपरी है। अगर कोष उबरते न हो तो बाह्य जनन में कोष खर्च करने से आन्तरिक प्रजनन के काम में बाधा पडेगी ही। हकीकत तो यह है कि सभ्य मनुष्यो में सतानोत्पत्ति की जरूरत से कही अधिक सभोग हुआ करता है, और वह भी आन्तरिक प्रजनन के मत्थे, जिसके कारण रोग, मृत्यु और दूसरे कष्ट मेहमान बनते है।

मनुष्य-शरीर का कुछ और गौर से हम विचार करे। उदाहरण के लिए हम पुरुष-शरीर को लेंगे, यद्यपि जरूरी हेर-फेर के साथ स्त्री-शरीर मे भी वे ही क्रियाये दिखलाई पडती है।

शुक्र-कोषो का केन्द्रीय खजाना ही जीव का सबसे पुराना और मौलिक स्थान है। शुरू से गर्भस्थ जीव कोषों की बढती से, जिनका माता के शरीर से पोषण होता है, हर घडी बढता रहता है। यहाँ भी जीवन का नियम है, '**शुक्र कोषों का पोषण करो**' जब वे बढते और उनका वर्गीकरण होता है, तब वे जरूरत के मुआफिक स्थायी या अस्थायी नये रूप या नये काम लेते है। जन्म की घडी से इसमें कोई खास फर्क नहीं पडता। पहले शुक्र-कोषो को जो पोषण नाभि-नाल से मिलता था वह अब मुँह के रास्ते मिलने लगता है। वे तादाद मे जल्दी-जल्दी बढने लगते हैं, और जहाँ कही पुराने अगो को दुरुस्त करने की जरूरत पडी, और जरूरत तो हमेशा बनी ही रहती है, वहाँ ये इस्तैमाल किये

जाते है । नाडियो के जयें ये अपने स्थान से लेकर सारे शरीर में फैलाये जाते है । वडे वडे समूहो मे वे खास काम ले लेते हैं और शरीर के भिन्न-भिन्न अगो की मरम्मत करते हैं । वे हजारो बार मौत को गले लगाते है, जिसमे उनका कोष समाज जीता रहे । मुर्दे कोष शरीर की तह पर आ जाते है, और खास कर हाडो, दातो, चमडे और बालो को मजबूत बनाने के काम आते है, जिसमे शरीर की ताकत वढे और ठीक हिफाजत हो । व्यक्ति के उच्च जीवन और उस पर निर्भर सभी बातो की कीमत इनकी मौत से चुकाई जाती है । अगर वे पोषण न ले, दूसरे कोषो को पैदा न करें, अलग-अलग न हो जायँ, भिन्न-भिन्न वर्गों मे न वॅटें, और अन्त मे मरे नही तो शरीर टिक नही सकता ।

शुक्र से या वीर्य से दो तरह के जीवन मिलते है: (१) आन्तरिक या प्रजनन का, (२) वाह्य या जनन का, वश विस्तार वाला । जैसा कि हम कह चुके हैं, शरीर के जीवन का आधार आन्तरिक प्रजनन है और इसको तथा वाहरी जनन को एक ही आधार पर निर्भर रहना पडता है । इसलिए यह सहज ही देखा जा सकता है कि खास-खास हालतो मे ये दोनो क्रियायें सभवतः परस्पर विरोधिनी हो सकती हैं, परस्पर शत्रुता रख सकती हैं ।

प्रजनन और अचेतन

प्रजनन की क्रिया कुछ यन्त्र के काम की-सी नही है । प्रारम्भिक काल मे कोषो के दिभजन से प्रजनन का जैसा सजीव कार्य होता था, वैसा ही सजीव अव भी होता है—अर्थात् वह वुद्धि और इच्छा पर निर्भर रहता है । यह सोचना असम्भव है कि जीवन का काम विलकुल निर्जीव कल की भॉति होता है ।

हाँ, यह सच है कि मूलीभूत बातें हमारी वर्तमान जागृति से इतनी दूर जा पड़ी है कि वे मनुष्य की या पशु की इच्छा के अधीन नही मालूम होती, परन्तु एक क्षण के बाद ही हमे मालूम पड जाता है कि जिस प्रकार एक पुष्ट शरीर वाले पुरुष की सभी बाह्य क्रियाओ का नियन्त्रण उसकी इच्छा-शक्ति करती है — और उसका काम ही यही है — उसी प्रकार शरीर के क्रमश होते हुए सगठन के ऊपर भी इच्छा-शक्ति का कुछ अधिकार अवश्य होना चाहिए। मनो-वैज्ञानिको ने उसका नाम असकल्प रक्खा है। यह हमारे नित्य नैमित्तिक विचारो से दूर होते हुए भी, हमारा ही अग विशेष है। यह अपने काम मे इतना जागरूक और सावधान रहता है कि हमारा चैतन्य कभी-कभी सुप्तावस्था मे पड जाता है, परन्तु यह सोता एक क्षण के लिए भी नहीं। हमारे असकल्प और अविनश्वर अश की जो प्राय अपूर्व हानि शरीर-सुख के लिए किये गये विषय-भोग से होती है उस का अन्दाजा कौन लगा सकता है? प्रजनन का फल मृत्यु है। विषय-सभोग पुरुष के लिए प्राणघातक है और प्रसूति के कारण स्त्री के लिए भी वैसा ही है।

तब अचेतन ही वह जीव-शक्ति है जो प्रजनन की मुश्किल क्रियाओ का सचालन करती है। इसका पहला काम है, गर्भस्थित जीव-पिंड को अन्य दूसरे कोषो से अलग करना। इसके बाद से जीव-पिंड को वह मौत तक मूल शुक्र-कोषो को अपने मे लेकर और उनको अपने-अपने अगो मे भेज कर जिलाये रखता है।

यहाँ, कई नामी मानस शास्त्रियो से मै विरुद्ध जाता मालूम होऊँगा मगर मेरी समझ मे अचेतन का सबध सिर्फ व्यक्ति से

रहता है न कि जाति से यानी उसका पहला काम है, प्रजनन।
सिर्फ एक तरह से कहा जा सकता है कि अचेतन का सबब
जाति से होता है। जहाँ तक अचेतन व्यक्ति की उन्नति कर
सका है, उसे जैसा बना सका है, वैसा ही बनाये रखना चाहता
है। मगर वह असम्भव को तो सम्भव कर नहीं सकता। चेतन
की सहायता से भी शरीरधारी का जीवन हमेशा के लिए वह
बनाये रख नहीं सकता। इसलिए सभोग की प्रवृत्ति या चाह
के जर्ये वह अपने आपको पैदा करना चाहता है। यहाँ पर
चेतन और अचेतन मिल गये-से कहे जा सकते है। सभोग
से जो मामूली तौर पर आनन्द मिलता है, उसे व्यक्ति के सुख
के अलावा किसी दूसरे हेतु की पूर्ति कहा जा सकता है। इस
उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यक्ति नही जानता कि उसे कितनी
अधिक कीमत देनी पडती है।

जनन और मृत्यु

इस लेख में विशेषज्ञों के लेखो से उतरे देना तो ठीक
नही है, मगर विषय के महत्व और साधारण अज्ञान के कारण
मुझे लाचार होकर कुछ प्रामाणिक उतारे देने ही पडते है।
एक कोषीय जीवो के सबध में श्री रे लैंकेस्टर लिखते है—

"इनमें शरीर के टुकडे-टुकडे हो जाने से वश-विस्तार होता
जाता है और इस प्रकार के जीवो में स्वाभाविक मौत को कोई
जगह ही नही है।"

श्री वाइस मैन लिखते है "कुदरती मौत तो सिर्फ बहु कोषीय
जीवो मे ही होती है। एक कोषीय जीव उनसे बच जाते हैं।
उनके विकास का कभी अत नहीं होता, जिसका मिलान हम
मृत्यु से कर सके, और न नई देह बनने का अर्थ है पुरानी

का मरना। टुकडे होने मे दोनो ही समान वय के हैं, न कोई पुराना न कोई नया। इस प्रकार एक-एक जीव की अनत श्रेणी चलती है, जिनमे हर एक उतना ही पुराना होता है, जितनी कि जाति और हर एक को अनन्त काल तक जीते रहने की शक्ति होती है, उसके टुकडे हमेशा होते जाते है, मगर वह कभी मरता नहीं है।"

श्री पैट्रिक गिडिस लिखते है "यो हम कह सकते हैं कि नये शरीर की कीमत मौत है। नया शरीर पाने की कीमत कभी न कभी मौत के रूप में देनी ही पडती है। कार्य-भेद से जिनमें स्वरूप का भेद है ऐसे कोषो के पुज को शरीर कहते हैं। ऐसे शरीर का नाश अवश्यभावी है।" श्री वाइस मैन के ये महत्वपूर्ण शब्द फिर देखिए "इस प्रकार शरीर तो कुछ हद तक जीवन के सच्चे आधार—शुक्रकोषो—को ढोनेवाला वाहन भर मालूम पडता है।"

श्री रे लैंकेस्टर का भी यही विचार जान पडता है. 'बहु-कोषीय जीवो में शरीर के और अगो से कुछ कोप अलग हो जाते हैं। . ऊँची श्रेणी के जीवधारियो के शरीर, जो मरण-शील होते हैं, इस दृष्टि से निहायत बेजरूरी और क्षणिक माने जा सकते ह, जिनका काम है, अपने से अधिक महत्वपूर्ण और अमर सयोग कलो या शुक्र-कीटो को सिर्फ कुछ दिनो के लिए ढोते भर रहना।"

मगर हमारे सामने सबसे अधिक आश्चर्य-जनक और महत्वपूर्ण बात तो है, ऊँची श्रेणी के जीवो में सतानोत्पत्ति और और मृत्यु में घनिष्ट सबध का होना। इस विषय पर कितने एक वैज्ञानिक खूब स्पष्टता से लिखते भी हैं।

प्रजोत्पत्ति का बदला मौत है

कई जाति के जीवो मे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है, जिनमे कि वश-वृद्धि में ही माता या पिता को प्राय जान से हाथ धोना पडता है। सतानोत्पत्ति के बाद भी जीना तो जिन्दगी की विजय है, जो हमेशा नही होती और किसी-किसी जाति मे तो कभी नही। मौत पर अपने लेख मे महाकवि गेटे ने खूब ही दिखलाया है कि प्रजोत्पत्ति और मौत का सबध बहुत घनिष्ट है, और होना ही चाहिए, और दोनो को ही मौत को बुलानेवाली क्रियायें कह सकते है। श्री पेट्रिक गिडिस इस विषय पर लिखते है "मौत और वाल्दयत का गाढा सरोकार है मगर आमतौर पर इसे गलत तरीके से कहा जाता है। लोग कहते है कि जीवो को मर जाना है, इस लिए उन्हें बच्चे पैदा करने ही होंगे, नहीं तो जाति का अत हो जायगा। मगर पिछली बातो पर इतना जोर देना तो पीछे की खोज है। सच्ची बात तो यह है कि बच्चे इसलिए पैदा नहीं किये जाते, बल्कि जीव इस लिए मरते है कि वे बच्चे पैदा करते है।"

श्री गेटे ने सक्षेप मे ही कहा है "मौत होगी ही, इस लिए बच्चे पैदा करना जरूरी नही है, बल्कि सतानोत्पादन का अवश्यभावी फल ही मृत्यु है।"

कितने एक उदाहरण देने के बाद श्री गिडिस इन महत्वपूर्ण शब्दो से अपना लेख समाप्त करते हैं, 'ऊची श्रेणी के जीवो मे वशोत्पत्ति के लिए आत्म-त्याग से मौत तो बहुत घट गई है, मगर तो भी मनुष्यो मे भी कामोपभोग के फल-स्वरूप प्राणान्त हो सकता है। यह तो सभी कोई जानते हैं कि सयत भोग-

विलास से भी शरीर कुछ दिनो के लिए खाली हो जाता है और शारीरिक शक्तियो के घटने पर सभी बीमारियो का होना ज्यादा संभव हो जाता है।"

थोड़े मे इस चर्चा का सारांश देकर इसे यो खत्म किया जा सकता है कि मनुष्यो मे संभोग से पुरुष की मौत जरूर नजदीक आती है, और बच्चे पैदा करने व उन्हें पालने-पोसने मे स्त्री की भी।

ऐयाशी के शरीर पर पड़नेवाले असरो पर पूरा एक अध्याय ही लिखा जा सकता है। अखंड या प्राय पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करनेवालो के लिए सबलता, पूर्णायु, जीवनी-शक्ति, रोगो से रक्षा तो स्वाभाविक बात होती है। इसका एक सबूत यह है कि निर्बल मनुष्यो के बहुत से रोग कृत्रिम रूप से सुई के जरिये शुक्र को खून मे पहुँचाने से छूट जाते हैं।

लेख के इस भाग मे दिये गये निष्कर्षों को स्वीकार करने मे भले ही कई पाठको को हिचक हो सकती है। इस पर कई आदमी दिखलाने लगेंगे कि 'ये बड़े-बूढ़े लोग, जिनके कई एक लड़के हुए अब भी स्वस्थ और सबल हैं। और फिर यह देखिए कि अविवाहितो से विवाहित ही अधिक दिन जीते हैं।' मगर इसके सामने इन दलीलो की कोई वकत नही है, क्योकि विज्ञान की दृष्टि मे मौत सिर्फ जीवन के अन्त का ही नाम नही है, बल्कि मौत एक क्रिया है जो जन्म से ही शुरू होकर जीवन-रूपी क्रिया के साथ साथ आजीवन क्षण-क्षण चालू रहती है। शरीर की मरम्मत करनेवाली जीवनी शक्ति और शरीर को क्षीण करनेवाली विनाश-शक्ति दोनो ही जीवन मरण की एकत्र रहनेवाली विभूतियाँ है। बचपन और नई जवानी मे

पहली शक्ति यानी जीवन-क्रिया घटती पर रहती है, प्रौढावस्था मे दोनो क्रियायें साथ-साथ बराबरी से चलती रहती हैं, और जीवन के पिछले हिस्से मे यानी बुढापे मे दिनो-दिन मौत की क्रिया ही बढती जाती है और अन्त मे प्राणान्त के साथ बाजी मार ले जाती है। अब मौत की इस जीत की घडी को जो कोई क्रिया जरा भी निकट लावे, एक क्षण, एक दिन, एक वर्ष या कई वर्ष, वह मौत की क्रिया का ही एक अग गिनी जायगी। और विषय भोग ऐसी ही क्रिया है, खास कर जब वह बहुत अधिक किया जाय।

मैं केवल इसी बात पर जोर देना चाहता हूँ कि मौत कुछ एक खास घटना नहीं है बल्कि एक निरन्तर चालू क्रिया की **परिणति** उसका अतिम परिणाम है। जिन्हें इसमें अब भी सन्देह हो वे ये किताबें देखें—

The Problem of Age, Growth and Death by Charles S Minot [1908, John Murray] and *Regeneration, The Gate of Heaven* by Dr Kenneth Sylvan Guthrie [Boston, The Barta Press]

मानस

जनन और प्रजनन की विरोधी शक्तियाँ शरीर को टिकाये रहती हैं, इसका पता शरीर के उच्च अगो, जैसे, खास कर मानस (मस्तिष्क और ज्ञान-तन्तु-जाल) के कामों का विचार करने से चलता है। दोनो स्नायुमडल—ज्ञान-तन्तु-जाल तथा आज्ञा वाहक—दूसरे सभी अगों के समान जीवन के मूल-स्थान से लिये गये, किसी समय के, मूल-कोषो से बने है। सारे

शरीर मे उनकी अरोक धारा वहती रहती है और खास करें दिमाग मे तो वहुत वडी मात्रा मे। इसलिए सतानोत्पादन के लिए या मले के लिए ही, उन कोषो की इस ऊर्ध्व गति को रोकने से उन अगो के जीवन का खजाना चुकने लगता है और धीरे-धीरे उनकी हानि ही होती है। इन्ही शारीरिक हकीकतो के आधार पर व्यक्तिगत सभोग-नीति वनती है, और अगर अखड ब्रह्मचर्य नही तो कम से कम सयम की सलाह दी जाती है।

इस संवध मे एक उदाहरण लीजिए। हिन्दू धर्म और सामाजिक जीवन से जो लोग कुछ भी परिचित है वे जानते हैं कि हिन्दू लोग पहले तपस्या करते थे, और अब भी कुछ लोग करते ही हैं। इसके दो उद्देश्य होते हैं। एक तो शरीर को निभाना और उसकी शक्तियाँ वढाना और दूसरा है, कुछ अलौकिक मानसिक शक्तिया यानी सिद्धियाँ प्राप्त करना। पहले का नाम हठयोग है, इसकी साधना एक मात्र शारीरिक सपूर्त्ति के लिए वहुत अधिक की जाती है। दूसरे को राजयोग कहते हैं और इसका अभ्यास मानसिक तथा योग-सवधी उन्नतियो के लिए किया जाता है। तो भी इन दोनो ही योगो मे एक वात तो समान है, और वह है शरीर-सवधी। यह वात पातंजल-योग-दर्शन मे दी हुई है।

पचक्लेशो मे 'राग' तीसरा क्लेश है (२-३)। 'राग' कहते हैं सुख भोगने के वाद जो इच्छा सुख भोगनेवाले मे छा जाती है, और फिर से वह सुख न मिलने पर जो सताप होता है, उस इच्छा को

सुखानुशायी राग ॥ ७ ॥ २ पाद

और सुख मे दु ख मिला हुआ है, इसलिए विवेकी जनो को उसका त्याग करना चाहिए

परिणामतापसस्कारदु खैर्गुणवृत्ति-
विरोधाच दु.खमेव सर्व विवेकिन. ॥ १५ ॥ २ पाद ।
यहाँ तक तो योगदर्शन में कामवासना का मनोवैज्ञानिक पहलू से विचार किया गया है। इसके बाद शारीरिक दृष्टि से आगे के सूत्रों में विचार किया गया है।

योगाभ्यास की पहली सीढी यमो की साधना है और यम पॉच है

अहिसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमा ॥३०॥ २ पाद ।
यह देख कर आश्चर्य होता है कि अपने को योगी कहनेवाले बकवादी चौथे यम को या तो जानते ही नही या उसे बतलाते ही नहीं। चौथा यम ब्रह्मचर्य' है।

पतजलि मुनि के अनुसार ब्रह्मचर्य की साधना के बहुत बडे लाभ होते हैं

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ ॥ ३८ ॥ २ पाद ।
अर्थात् जो ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित है उसे वीर्य या शक्ति-लाभ होता है। उसे तरह-तरह की सिद्धियां हस्तगत होती हैं।

श्रीयुत मणिलाल न. द्विवेदी कहते हैं "यह तो शरीर-शास्त्र का सामान्य नियम है कि बुद्धि के साथ शुक्र का सबध बहुत गाढा है और हम कहेंगे कि आध्यात्मिकता के साथ भी है। इस अमूल्य वस्तु का सचय करने से मनुष्य को शक्ति मिलती है, वह सच्ची आध्यात्मिक शक्ति मिलती है, जिसे आदमी चाहता है। पहले इस नियम का अवश्य ही पालन किये बिना, कोई योग सफल नहीं होता।"

यह भी कह देना चाहिए कि ब्रह्मचर्य-पालन की क्रिया तथा उद्देश्य शास्त्रीय और तांत्रिक रूप से भाष्यो में छिपे हुए

दिये जाते है। जैसे कि कहा जाता है कि सर्प के समान शक्ति सबसे निचले चक्र (अड कोष) से चढ कर सब से ऊँचे चक्र (मस्तिष्क) मे जाती है।

व्यक्तिगत संभोग-नीति

साधारणत व्यक्तियो, समाजो, या जातियों के अनुभवो पर से नीतिशास्त्र की रचना होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर मालूम पडता है कि किसी न किसी बडे बहुमान्य पुरुष ने नीति के नियम बनाये हैं। मूसा, बुद्ध, कन्फ्यूशियस, सुकरात, अरस्तू, ईसा और उनके बाद के दूसरे महापुरुषो और दर्शनिकों ने अपने-अपने देश और जमाने मे मनुष्य के आचार की कुछ कसौटी जरूर रक्खी थी।

इससे हम देख सकते है कि सर्वमान्य नीति-शास्त्र का आधार दर्शनशास्त्र, मानसशास्त्र, शरीरविज्ञान, और समाजशास्त्र के ऊपर रहता है। ये सब शास्त्र मिल करके वास्तविक या काल्पनिक मसाला दे देते है जिस के ऊपर से कई सिद्धान्त अपने आप स्वयसिद्ध-से निकल पडते है। उन्ही सिद्धान्तो का सग्रह नीतिशास्त्र है।

इसलिए किसी खास युग या सभ्यता की व्यक्तिगत सभोग-नीति उसी बात के आधार पर बनेगी, जिसका उस समय के लोगो पर, उनके अपने अनुभवो में अधिक से अधिक असर पडा होगा। गोकि सामाजिक सभोग-नीति के समान यह व्यक्तिगत सभोग-नीति भी समय-समय पर बदलती रहती है, किन्तु तोभी इन दोनो में ही कुछ ऐसी स्थिर बातें हैं जो कि कम या बेश स्थायी होती है।

इस युग के लिए सभोग-नीति को निश्चित करते समय हमको आजतक की मालूम सभी बातों तथा सभवताओ का

खयाल रखना और खास कर वैसी वस्तुओ पर ध्यान देना होगा, जिनका समर्थन योग्य विद्वान् करते हैं। अगर मै यह कहूँ कि मेरे लेख के पहले पॉच विभागो में दिखलाई गई हकीकतो पर ध्यान देते ही किसी भी बुद्धिमान् और ईमानदार पाठक के मन मे कई तर्क-सिद्ध और अनिवार्य परिणाम आयेंगे ही तो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से जान पडेगा कि इन हकीकतो का एक ही परिणाम है और वह है ब्रह्मचर्य का पालन। मगर इसके विरुद्ध हमे एक दूसरा प्राकृतिक नियम भी तुरत ही मिल जाता है। पहला नियम है, प्राकृतिक उत्तेजना यानी काम वासना का और दूसरा और नया नियम है, ज्ञान के, विज्ञान के, अनुभव के, विश्वास के और आदर्श आधार पर निकले हुए ब्रह्मचर्य का। पहले नियम यानी कामवासना की पूर्त्ति करने से वहुत शीघ्र ही बुढापा और मृत्यु आती है, मगर नियम के पालन के रास्ते मे इतनी वडी-वडी कठिनाइयॉ पडी हुई है कि शायद ही कोई उस की ओर ध्यान देता हो। लोग इस वात पर विश्वास करने को तैयार ही नहीं होते। ये तुरत ही कहने लगते है — मगर, लेकिन —? यहॉ यह वात विचारणीय है कि योगियो और भिक्षुओ के लिए सयम-नियम के जो कठिन-नियम वनाये गये थे, उनका आधार केवल अधश्रद्धा या पौराणिक गपोडे ही नहीं है, किन्तु इस लेख में वतलाई गई शरीर-शास्त्र की वातो का विशिष्ट ज्ञान है।

मेरे जानते काउण्ट टाल्सटॉय से अधिक जोरो से या स्पष्ट तौर पर किसी दूसरे आधुनिक लेखक ने सभोग-नीति को नहीं वतलाया है। मै उनके कुछ विचार नीचे देता हूँ

१०२ अपनी जाति को कायम रखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति — यानी काम वासना — मनुष्य में स्वभाव से ही रहती है। अपनी पशुता की दशा में वह इस इच्छा की पूर्त्ति करके अपना काम पूरा करता है और इससे भलाई होती है।

१०३ मगर ज्ञान का उदय होते ही उसे जान पड़ने लगता है कि इस वासना की पूर्त्ति करने से खास उसकी अलग कुछ भलाई होगी, और वह अपनी जाति को कायम रखने के इरादे से नहीं, किन्तु खास अपनी भलाई करने के इरादे से विषय करने लगता है। यही विषय-सम्बन्धी पाप है।*

१०७ पहली हालत मे जब कि कोई ब्रह्मचर्य का पालन करना और अपनी सारी शक्तियों को परमात्मा की सेवा मे लगाना चाहता हो, तब उसके लिए प्रजोत्पादन के हेतु से भी सभोग करना पाप होगा। जिसने अपने लिए ब्रह्मचर्य का मार्ग चुना है, उसके लिए विवाह भी स्वभाव से ही एक पाप होगा।

११३ जिसने ब्रह्मचर्य का मार्ग चुना है, उसके लिए विवाह करने में यह पाप है कि अगर वह विवाह न करता तो शायद सब से बड़े काम को चुनता, ईश्वर की ही सेवा में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता और इसलिए प्रेम के प्रचार और सब से बड़े मगल की प्राप्ति में अपनी शक्ति लगा देता लेकिन विवाह करने से वह नीचे उतर आता है और अपना मगल साधन नहीं कर पाता है।

---

* पाठकों को यहाँ यह याद रखना चाहिए कि टाल्सटॉय की पाप की परिभाषा सामान्य परिभाषा से अलग है। वह पाप उसको कहता था, जो प्रेम के प्रदर्शन मे यानी सब के प्रति शुभ कामना के रास्ते में बाधक हो।

११४. जिसने वंश-रक्षा का मार्ग पकड़ा है, उसके लिए यह पाप है कि प्रजोत्पादन न करने से या कम से कम कौटुंबिक संबंध न पैदा करने से, वह दाम्पत्य जीवन के सबसे बड़े सुख से अपने को वंचित रखता है।

११५. इसके अलावा और सभी सुखों के समान, जो लोग संभोग के सुख को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं वे जितना ही अधिक काम-लालसा को बढ़ाते हैं, उतना ही अधिक स्वाभाविक आनंद को कम करते जाते हैं।

पाठक देखेंगे कि टाल्सटॉय का सिद्धान्त सापेक्षिक है, यानी किसी के लिए परमात्मा की ही ओर से या किसी बड़े शिक्षक की ओर से पक्का नियम नहीं बना दिया गया है, किन्तु सभी को अपना-अपना मार्ग चुनना है। केवल इतना ही आवश्यक है कि जिसने अपने लिए जो मार्ग चुना है, उसे उसीका पालन करना चाहिए।

ऐसी धर्म-नीति में एक के बाद एक, मगर उतरते हुए निषेध होंगे। जो आदमी अखंड ब्रह्मचर्य में विश्वास करता करता है किसी बड़े और ऊँचे शारीरिक तथा आध्यात्मिक लाभ के लिए जान बूझ कर इन्द्रिय-दमन करने का प्रयत्न करता है, उसके लिए किसी किस्म के संभोग का निषेध है, जिसने विवाह कर लिया है, उसके लिए पर पुरुष या पर स्त्री का संग मना है। इससे आगे बढ़कर अगर अविवाहितों के लिए जिनका अनियमित संभोग चलता है, वेश्या-सेवन जैसा जघन्य काम निषिद्ध है तो स्वाभाविक कर्म करने वाले के लिए अप्राकृतिक कर्म बहुत ही बुरा है। इससे भी आगे चलकर अगर किसी किस्म के अब्रह्मचर्य करने वालों के लिए उसमें अतिशयता करनी बुरी

गिनी जायगी तो नवयुवकों, बच्चों के लिए अब्रह्मचर्य केवल स्थगित ही है। सभोग-नीति का यही स्वरूप है।

मैं इसकी कल्पना कर ही नहीं सकता कि कही ऐसे आदमी भी मिलेंगे जो इस सामान्य सभोग-नीति को समझ न सकें, और ऐसे थोडे ही आदमी मिलेंगे जो गभीरता-पूर्वक विचार करने के बाद भी इसका विरोध करें। मगर तो भी ऐसी नीति का विरोध वाग्जाल या तर्कजाल से करने की प्रवृत्ति दिखलाई पडती है। लोग मान बैठते हैं कि चूँकि ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन है और विरला ही कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कभी देखने मे आता हो, इसलिए ब्रह्मचर्य का समर्थन करना ही अनुचित है। ऐसी दलील करनेवालो को तो तर्क के अनुसार अपने ही पति या पत्नी से सतुष्ट रहने — जो कि कुछ लोगो के लिए मुश्किल काम होता है, या दम्पति के बीच भी काम तृप्ति की अति न करने या केवल प्राकृतिक कर्म ही करने — आदि बातो का भी विरोध करना चाहिए। वे अगर एक आदर्श का विरोध करते हैं तो वे सभी आदर्शों का विरोध करेंगे और हमे बुरे से बुरे पापो और काम-लालसाओ के गड्ढे में डालकर ही दम लेंगे। भला वे ऐसा क्यो न करेंगे? सच पूछो तो एक मात्र सच्चा और तार्किक नियम यह है कि हम अपने आदर्श के ध्रुव तारे को देखते हुए चलें, जो कि हमे सभी भूलभुलैयो से निकाल कर, विरोधी नियमो का बल तोडकर सीधे रास्ते पर ले जायगा। इस भाँति समझ-बूझकर स्वेच्छा-पूर्वक इस नीति के अनुसार आचरण करनेवाले से यह आशा रक्खी जा सकती है कि नौजवानी के अप्राकृतिक कर्मों से कही ऊँचे उठकर वह प्राकृतिक आचरण, चाहे वह भले ही अनियमित

हो, करने लगेगा। इस स्थिति मे से भी निकल कर वह दाम्पत्य धर्म के सयम-नियम में बँध सकता है और अपने तथा अपनी सहधर्मिणी के लाभ के लिए जहाँ तक वह कर सके, सयम का पालन कर सकता है। यही नीति सभवत उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी तक बना सके या और नही तो अतिशयता के गड्ढे मे से गिरने से बहुत कुछ रोक ले सकती है।

सामाजिक सभोग-नीति

जैसे कि व्यक्तियो की समष्टि का नाम समाज है ठीक वैसे ही व्यक्तिगत सभोग-नीति से ही सामाजिक सभोग-नीति पैदा होती है। दूसरे-शब्दो मे यो कह सकते है कि व्यक्तिगत सभोग-नीति मे समाज कुछ वृद्धि करता है, कुछ मर्यादा जोडता है। इसका मुख्य उदाहरण विवाह-सस्था है। विद्वान् वैज्ञानिको ने विवाह के इतिहास पर बहुत कुछ लिखा है और इस सबध में बहुत अधिक मसाला इकट्ठा किया गया है। इसलिए आजकल विवाह-सस्था में जो परिवर्तन सुझाये जा रहे है, उनका उल्लेख कर सकने के लिए, उपर्युक्त विद्वानो के निष्कर्षों का केवल साराश भर दिया जायगा।

मनुष्य जाति में प्रजोत्पादन के सबध मे माता का महत्व पिता से अधिक है। माता को ही ले कर कुटुम्ब की रचना होती है। फलत एक जमाने में मातृ-वश यानी माता के ही शासन की विधि प्रचलित थी और इसीलिए बहुपति-विवाह अथवा एक स्त्री के कई पति होने की प्रथा भी शुरू हुई थी। एशिया की कुछ आदिम जातियो में अब भी इस प्रथा के अवशिष्ट चिह्न पाये जाते है। कई पतियो मे से जो सबसे बलवान और रक्षा करने मे समर्थ होता था धीरे धीरे

उसका औरो से विशेष आदर होने लगा और समय पाकर वह जिस पद पर प्रतिष्ठित हुआ उसका विकास हो कर पति का पद बना। माता के साथ जिन कई आदमियो का सबध रहता था, उनमें जो सब से अधिक बलशाली, सुन्दर और सशक्त होता, उसे दूसरो से कुछ ऊँचा पद दिया गया। अग्रेजी भाषा में पति या गृहपति के लिए 'हसबैंड' (Husband) शब्द प्रचलित है। हसबैंड का मूल है Husbuendi जिसके मानी होते हैं, घर में रहनेवाला। इसी एक शब्द में विवाह-सस्था का बहुत कुछ इतिहास भरा हुआ है। सभी पतियो मे से जो पत्नी के साथ उसके घर पर रहता था, वह धीरे-धीरे गृहपति या हसबैंड कहलाने लगा। क्रमश वह घर का मालिक बन गया और ऐसा ही कोई 'हसबैंड' जाति का सरदार और राजा बना। पुरुषो का शासन शुरू होते ही बहुपत्नीत्व की प्रथा चल पडी, जैसे कि स्त्रियो के राज्य में बहुपतित्व की चली थी।

इसलिए, अगर सामाजिक रूप में नही तो अपने स्वभाव से ही स्त्री बहुपतित्व के और पुरुष बहुपत्नीत्व के रिवाज को पसद करनेवाला होता है। पुरुष अपनी इच्छायें सभी ओर दौडा कर प्राय अत्यन्त सुदरी स्त्री को ही पसद करता है। स्त्री भी वही करती है। लेकिन अगर स्त्री-पुरुषो की अनियमित, स्वाभाविक और मानसिक वासनाओ पर कोई लगाम न लगती तो क्या आदिम और क्या आधुनिक, मनुष्य-समाज का नाश निश्चय ही हो जाता। मनुष्य से नीचे के और सभी जानवरो मे इन सब इच्छाओ की अतिशयता है। समाज ने विवाह के रूप मे यह नियत्रण शोधा और अत में एक पुरुष के लिए एक ही स्त्री के साथ विवाह का नियम प्रचलित हुआ। इसका एक

हां विकल्प है और वह है स्त्री पुरुषो का अनियमित मिलन। ऐसी अनियमितता के प्रचार से मनुष्य–समाज का और कम से कम आधुनिक समाज का नाश निश्चित है। इस विवाह-रूपी अकुश और अनियमितता के वीच हम सहज ही सग्राम देख सकते है। वेश्या–गमन, अनियमित और गैरकानूनी मिलन, व्यभिचार और तलाको से नित्य प्रति यही सिद्ध होता है कि पुराने और आदिम सबधों से ज्यादह पक्की जड, अभी तक विवाह–सस्था नहीं जमा सकी है। क्या कभी वह जमा सकेगी?

इस वीच हमे एक और उपाय पर विचार करना जरूरी है, जो कि गुप्तरूप से वहुत दिनो से प्रचलित रहा है, मगर हाल मे ही जिसने बेशर्मी से सिर उठाना शुरू किया है। यह है, सतति–निरोध। इसका तरीका है ऐसी दवाओ या यन्त्रो का प्रयोग करना जिनसे गर्भाधान न होने पावे। गर्भाधान होने से स्त्री पर जो भार पडता है, उसके अलावा भी पुरुष को और खास कर दयालु पुरुष को वहुत काफी समय तक सयम रखना पडता है। सतति–निरोध से तो आत्मसयम करने की कोई मस्लहत ही नहीं रह जाती, और जबतक इच्छा ही कम न हो जाय या इन्द्रियॉं शिथिल न हो जाय तबतक कामवासना को तृप्त करते जाना सभव हो जाता है। खैर, इसके अलावा भी, पर-स्त्री के साथ सबध पर इसका असर जरूर ही पडता है। अनियमित, अनियंत्रित, और सतान–हीन सभोग के लिए यह दरवाजा खोल देता है, जो कि आधुनिक उद्योगो, समाज–शास्त्र तथा राजनीति की दृष्टि से खतरनाक है। मैं इन वातो पर यहॉं विचार नहीं कर सकता। इतना ही कहना काफी है कि संतति–निरोध के कृत्रिम उपायों से स्वपत्नी और पर–स्त्री, दोनों के साथ

अतिशय संभोग की सुविधा हो जाती है और अगर मेरी शरीर-शास्त्र संबंधी दलीलें सही हैं तो इससे समाज और व्यक्ति दोनों का अकल्याण होना ध्रुव है।

उपसंहार

खेत में डाले हुए बीज के समान यह लेख भी कुछ ऐसे लोगों के हाथ में पड़ेगा जो कि इससे घृणा करेंगे, और कुछ ऐसों की भी नजर में गुजरेगा जो महज आलस्य या अयोग्यता के कारण इसे समझ नहीं सकेंगे। जो लोग इसमें बतलाये विचारों को पहले-पहल सुनेंगे, उनमें इसके प्रति विरोध-बुद्धि पैदा होगी, क्रोध तक भी उत्पन्न होगा, और बहुत ही थोड़े आदमियों को यह सच्चा और उपयोगी जान पड़ेगा। और उनके दिलों में भी शंकायें तथा संदेह उठेंगे। सबसे भोले-भाले लोग कह उठेंगे 'आपकी राय में तो किसी हालत में विषयभोग करना ही नहीं चाहिए। अजी तब तो सृष्टि का ही लय हो जायगा। इसलिए आपके विचार जरूर ही गलत होने चाहिएँ।" मेरा जवाब यह है कि मेरे पास ऐसा कोई भयानक रसायन है ही नहीं। ब्रह्मचर्य का पालन करने के प्रयत्न से जितनी जल्दी सृष्टि का लय होगा, उससे कहीं अधिक तेजी से संतति-निरोध के उपाय पृथ्वी को मनुष्यों के भार से हलका कर देंगे। संतान को जन्म लेने से रोकने का सबसे सबल तरीका संतति-निरोध का ही है। मेरा हेतु बहुत सीधा सादा है। अज्ञान और स्वच्छन्दता के जवाब के रूप में कुछ दार्शनिक और वैज्ञानिक सत्यों को रख कर मैं इस युग के लोगों में स्त्री-पुरुष के संबंध को शुद्ध करने में सहायता देना चाहता हूँ।

लागत मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली

सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला, सेठ जमनालालजी बजाज द्वारा स्थापित

भारतवर्ष की एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-मण्डल

अजमेर की

पुस्तकों का सूचीपत्र

मण्डल के स्थाई ग्राहक बनकर सब पुस्तकें

पोने मूल्य में मंगा सकते हैं

पूज्य मालवीयजी का

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

हिन्दी में 'त्याग-भूमि' जैसी सुन्दर, सुसम्पादित सात्विक राजस-प्रधान पत्रिका देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। इसके लेख और टिप्पणियाँ विचारपूर्ण होती है। स्त्रियों और युवकों को उपदेश और उत्साह देने की सामग्री इसमें खूब रहती है। अभी पत्रिका

आठ दस हज़ार वार्षिक घटी सहकर

इतनी सस्ती दी जा रही है। पर यदि इसके दस बारह हज़ार ग्राहक हो गए तो फिर घटी न रहेगी। मैं आशा करता हूँ कि देशभक्त हिन्दी के प्रेमी इसके प्रचार में सहायक होंगे।

'सस्ता-मण्डल अजमेर' ने उच्च-कोटि की पुस्तकें सस्ती निकालकर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। सर्व साधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।

मदनमोहन मालवीय

क्या आप मंडल व त्यागभूमि के ग्राहक बन कर

या अपने एक दो मित्रो को बनाकर,

इस साहित्य सेवा और देशसेवा के यज्ञ में

सहायना न करेंगे?

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

उद्देश्य

यह मंडल शुद्ध सेवा भाव से हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकें व पत्रिकाएं सस्ते से सस्ते मूल्य में प्रकाशित करने के लिए स्थापित हुआ है। इस मंडल से ऐसी ही पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, जो भाषा, भाव, शुद्धता, छपाई सफाई सभी दृष्टियों से उच्च-कोटि की हों। साहित्य ऐसा दिया जाता है जो ज्ञानवर्द्धक, उत्साहप्रद और देश सेवा प्रेरक हो। स्त्रियों और बालकों के उपयोग की भी पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहक बनने के नियम

(१) एक रुपया प्रवेश फीस भेजकर कोई भी सज्जन इस मण्डल के स्थाई ग्राहक बन सकते हैं। यह प्रवेश फ़ीस मनीआर्डर द्वारा पेशगी भेजनी चाहिए। यह प्रवेश फ़ीस वापस नहीं लौटाई जाती।

(२) स्थायी ग्राहक मंडल द्वारा प्रकाशित सब पुस्तकों की एक एक प्रति पौनी कीमत* में मंगा सकते हैं। यदि एक से अधिक प्रतियां मंगाना हों तो, दो आना फी रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं।

(३) ग्राहक बनने के समय से पहिले प्रकाशित हुए ग्रन्थों का लेना न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। पर आगे प्रकाशित होने वाली पुस्तकों में से वर्ष भर में कम से कम साढे चार रुपयों के मूल्य (कमीशन काट कर अर्थात् छै रुपियों की पूरी कीमत से) की पुस्तकें अपनी मन चाही चुन कर अवश्य लेनी होती हैं। मण्डल से हर वर्ष प्रायः आठ दस रुपयों के मूल्य की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं।

(४) यदि स्थाई ग्राहक की लापरवाही से या भूल से वी॰पी॰ का पार्सल वापस लौट आवेगा तो डाक खर्च उन्हीं के जुम्मे होगा। यदि एक मास के भीतर भीतर वे पोस्टेज हानि न भेज देंगे तो उनका नाम स्थाई ग्राहकों में से काट दिया जायगा और फिर से एक रुपया भेजने पर ही उनका नाम स्थाई ग्राहकों में लिखा जायगा।

---

* प्रचार के लिए आत्म-कथा का मूल्य लागत से भी कम रखा गया है इसलिए यह पुस्तक पूरे मूल्य में ही ग्राहकों को भी दी जाती है।

(५) नई पुस्तकें प्रकाशित होने पर उन्हें भेजने के पंन्द्रह दिन पहले ग्राहकों के पास पुस्तकों के नाम विवरण, मूल्य आदि की सूचना भेज दी जाती है। पंन्द्रह दिन वाद पौनी कीमत से वी० पी० द्वारा पुस्तकें ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं।*

(६) मण्डल से ग्राहक नम्बर की सूचना मिलते ही अपने यहां नोट बुक में या पुस्तकों पर नम्बर जरूर लिख लेना चाहिए। पत्र व्यवहार करते समय, यह नम्बर जरूर लिख भेजना चाहिए। बिना ग्राहक नंबर लिखे यदि कोई सज्जन पुस्तकों का आर्डर भेज देंगे और हमारे यहां से पूरे मूल्य में पुस्तकें चली जावेंगी तो उसके जिम्मेवार हम न होंगे।

आवश्यक सूचनाएँ

(१) वी० पी० द्वारा पुस्तकें मँगाकर लौटा देने से हमारी बड़ी हानि होती है। एक तो पुस्तकें वापस आने मे खराब हो जाती हैं, दूसरे पोस्टेज हानि व्यर्थ में होती है। इसलिए कृपा कर पहले से ही सोच समझ कर पुस्तकें मँगाइए। देशभाई के नाते इस संस्था की हानि आप ही की हानि है।

(२) ग्राहकों को अपना नाम, गाँव, पोस्ट, और जिला तथा अधिक माल मंगानेवालों को अपने स्टेशन का नाम तथा रेलवे लाइन का नाम खूब साफ साफ लिख भेजना चाहिए।

(३) रेल द्वारा पुस्तकें मँगानी हो तो आर्डर के मूल्य के चौथाई रुपये पेशगी भेजना चाहिए। अन्यथा पुस्तकें नहीं भेजी जावेंगी। इसी तरह दस या इससे अधिक मूल्य की पुस्तकें मँगानेवालों को कुछ रुपये पेशगी भेजना चाहिए।

(४) किसी वी० पी० में हिसाब संबंधी या और किसी तरह की कोई भूल जान पड़े, तो उसे लौटाना न चाहिए। वी० पी० छुड़ा कर हमें लिख भेजें। भूल तुरन्त ठीक कर दी जावेगी।

निवेदक—जीतमल लूणिया मन्त्री, सस्ता-मंडल, अजमेर।

---

* नई पुस्तकों में से यदि कोई एक दो पुस्तक न लेनी हो अथवा और कोई पुस्तक साथ में मगानी हो तो सूचना-पत्र मिलते ही हमें लिख देना चाहिए। पंन्द्रह दिन के अन्दर कोई सूचना न मिलने पर सब नई पुस्तकें वी० पी० द्वारा भेज दी जाती है।

सस्ता-मंडल अजमेर की सस्ती और उपयोगी पुस्तकें

पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ संख्या और उनके मूल्य पर विचार कीजिए। कितनी उपयोगी और साथ ही कितनी सस्ती हैं।

अन्य प्रकाशक १०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ॥) या ॥=) रखते हैं

पर मण्डल केवल ।) रखता है, इतने पर भी

१) भेजकर स्थाई ग्राहक बनने से सब पुस्तकें पौने मूल्य में मिलती हैं।

(१) ब्रह्मचर्य-विज्ञान—(लेखक पं० जगन्नारायणदेव शर्मा साहित्यशास्त्री) पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे इसकी भूमिका में लिखते हैं "लेखक ने पुस्तक में ब्रह्मचर्य-रक्षा संबंधि सभी विचारणीय बातों का समावेश किया है। प्राचीन ग्रन्थों से जो अवतरण दिये हैं, वे बहुत ही स्फूर्तिदायक हैं। भारतीय युवकों को इस पुस्तक का धर्मग्रन्थ की तरह पाठ करना चाहिए।" पृष्ठ संख्या ३७४ मू० ॥।-)

(२) कर्मयोग—(ले० श्री अश्विनीकुमारदत्त) गीता के मुख्य विषय का प्रतिपादन बड़े ही अच्छे ढंग से किया है। पृष्ठ १५२ मू० ।=) दूसरी बार छपी है।

(३) यथार्थ आदर्श-जीवन—वास्तव में मानव जीवन का आदर्श क्या होना चाहिए? यह पुस्तक आपको अपना रास्ता ढूँढ़ने में बहुत सहायक होगी। पृष्ठ २६४ मूल्य ॥-)

(४) दिव्य जीवन—संसार के प्रसिद्ध विचारक स्विट् मार्स्डन के 'The miracles of Right Thoughts' का हिन्दी अनुवाद। पुस्तक दिव्य विचारों की खान है। पृष्ठ १३६ मू० ।=) चौथी बार छपी है।

(५) व्यवहारिक सभ्यता—छोटे बड़े सब के लिए उपयोगी व्यवहारिक शिक्षायें। बालकों के लिये तो यह बड़ी ही उपयोगी पुस्तक है। पृष्ठ १२८ मू० ।)॥

(६) आत्मोपदेश—महात्मा एपिक्टेटस के आध्यात्मिक विचार। पृष्ठ १०४ मूल्य ।) यह भी दूसरी बार छपी है।

(७) जीवन-साहित्य—(ले० आचार्य काका कालेलकर) धर्म, नीति, समाज-सुधार, शिक्षा और राजनीति सम्बन्धी सजीव और मनोहर लेखों का संग्रह। काका साहब के प्रत्येक लेख में पाठक असाधारण प्रतिभा का दर्शन करेंगे। प्राचीनता और नवीनता का समझौता आप जिस कुशलता के साथ करते हैं वह देखते ही बनता है। प्रथम भाग पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) दूसरा भाग पृष्ठ २०० मू० ॥) इसकी भूमिका श्री बाबू राजेन्द्रप्रसादजी ने लिखी है।

(८) तामिल-वेद—(ले० अछूतसंत ऋषि तिरुवल्लुवर) भू० ले० श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचार्य—अनु० श्री क्षेमानन्द राहत

"दक्षिण में इस ग्रन्थ का आदर वेदों के समान है। वहाँ यह पाचवां वेद कहलाता है। इसमें धर्म और नीति के ऐसे मूल सिद्धान्तों का उपदेश किया गया है जिससे मनुष्य के जीवन का दिन रात काम पडता है। पुस्तक की रचनाशैली बडी सरल और बोधगम्य है" (सरस्वती) पृष्ठ २४८ मूल्य ॥=)

(९) शैतान की लकड़ी—(अर्थात् भारत में व्यसन और व्यभिचार का दौरदोरा) सारा समाज व्यसन और व्यभिचार में आकण्ठ फसा हुआ है। समाज की हालत देखकर आपका दिल दहल जायगा। व्यसनों में हम करोडों रुपये बरबाद कर रहे हैं और व्यभिचार तो हमारे जीवन-सत्व को ही नष्ट कर रहा है। इसे मंगाकर पढ़िए और अपने आपको तथा बालकों को इन बुराइयों से बचाने की कोशिश कीजिए। पृष्ठ २६५ मूल्य ।॥=) इसके लेखक हैं श्री वैजनाथ महोदय बी० ए०। पुस्तक में कई चित्र भी हैं।

(१०) अन्धेरे में उजाला—(टाल्सटाय का उत्कृष्ट नाटक) सर्वस्व त्यागकर देशसेवा व आत्मोन्नति करना ही जीवन का सार है, यही इस नाटक का विषय है। पृष्ट लगभग १६० मूल्य ।≤)

(११) सामाजिक कुरीतियाँ—(ले० महात्मा टॉलसटॉय) टालसटॉय के लेखों ने और ग्रन्थों ने रूस और यूरोप के पढे-लिखे लोगों में महान् क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। भारतीय पाठकों के लिए भी यह बहुत उपयोगी है। पृष्ठ २८० मूल्य ॥≤)

(१२) तरंगित हृदय—[ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार] भू० ले० पं० पद्मसिंह शर्मा—एक प्रतिभाशाली हृदय संसार का अवलोकन करता है और उसमें विचारों की अद्भुत और स्फूर्तिजनक तरंगें—विचारों की तरंगें—उठती हैं, यह उन्हीं का संग्रह है। पृष्ट १७६ मू० ॥) हिंदी संसार ने इसकी बडी प्रशंसा की है

(१३) भारत के स्त्रीरत्न—(दो भाग) प्राचीन भारत के प्राय. सब धर्मों और सभी जातियों की आदर्श-पतिव्रता, वीर, विदुषी और भक्त लगभग ९० महिलाओं के ओजस्विनी भाषा में लिखे गये जीवन चरित्र। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मूल्य १) दूसरा भाग पृष्ठ ३२८ मूल्य ॥।–)

(१४) कन्याशिक्षा—बालिकाओं के लिए। पृष्ठ ९४ मू० ।) द्वितियावृत्ति

(१५) सीताजी की अग्निपरिक्षा—यह एक मनगढंत काव्य कल्पना नहीं ऐतिहासिक सत्य है। दलीलें बड़ी विचारणीय हैं। पृष्ठ १२४ मू० ।-)

(१६) स्त्री और पुरुष—(म० टाल्सटाय) स्त्री और पुरुषों के आदर्श सम्बन्ध पर बड़े ही अद्भुत विचार हैं। पृष्ठ १५४ मू० ।=)

(१७) घरों की सफ़ाई—प्रत्येक स्त्री, पुरुष व बालक को यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। पृष्ठ ९२ मू० ।)

(१८) आश्रम-हरिणी—(श्री वामन मल्हार जोषी एम० ए० लिखित सामाजिक उपन्यास) पृष्ठ ९२ मूल्य ।)

(१९) क्या करें ?—(टॉल्स्टाय) 'Who touches this book, touches a man' (Wall Whitman) यह पुस्तक नहीं, मानव हृदय के कोमल और पवित्रतम विचारों का स्रोत है। टॉल्स्टाय के ग्रन्थों ने संसार के साहित्य और रूस के सामाजिक जीवन में एक अद्भुत क्रान्ति कर डाली है। यह पुस्तक उन्हीं विचारों का एक सुन्दर संग्रह है। जीवन की गम्भीरतम समस्याओं "क्या करें" का उत्तर है। प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मू० ।।=)

(२०) गंगा गोविन्दसिंह—ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों और उनके कारिन्दों की काली करतूतें और देश की विनाशोन्मुख स्वाधीनता को बचाने के लिए लड़ने वाली आत्माओं की वीर गाथाओं का उपन्यास के रूप में वर्णन। पृष्ठ २८८ मूल्य ।।=)

(२१) अनोखा—फ्रांस के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो के 'The Laughing man' का हिन्दी अनुवाद। सत्ता और वैभव में सद्गुण नहीं पनप सकते। यह तो ग़रीबी की उपज है यही बात लेखक ने विनोद में एक पागल के मुँह से कहलाई है। अनुवादक हैं ठाकुर लक्ष्मणसिंह बी० ए० एल० एल० बी०। पृष्ठ ४७४ मू० १।=)

(२२) कलवार की करतूत—(महात्मा टॉल्स्टाय) एक छोटासा अत्यन्त मनोरंजक और शिक्षापूर्ण प्रहसन नाटक रूप में। पृ० ४० मू० -)।।।

(२३) श्री राम चरित्र (२४) श्री कृष्ण-चरित्र। दोनों पुस्तकों के लेखक हैं महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रा० ब० श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०। दोनों ही पुस्तकें बड़ी खोजके साथ लिखी गई है। श्रीराम चरित्र की पृष्ठ संख्या ४४० और मूल्य १।) है। श्री कृष्णचरित्र की भी पृष्ठ संख्या लगभग ४०० होगी और मूल्य भी लगभग १।) होगा। श्री कृष्ण-चरित्र सन् २९ के अंत तक छप जायगा।

(२५) आत्म-कथा—[म० गांधीजी के 'सत्य के प्रयोगों' अथवा 'आत्म-कथा' का हिन्दी अनुवाद] अनुवादक पं० हरिभाऊ उपाध्याय। इस ग्रन्थ-रत्न का परिचय देना व्यर्थ है। पृष्ठ ४१६ प्रचार के लिये मूल्य केवल ॥=) रखा गया है। अंग्रेजी में इस पुस्तक का मूल्य ५) है। यह प्रथम खण्ड है।

(२६) स्वामीजी (श्रद्धानन्द) का बलिदान और हमारा कर्तव्य अर्थात् हिन्दू-मुस्लिम समस्या—ले० पंडित हरिभाऊ उपाध्याय—आज इस समस्या ने देश को जितना परेशान कर रक्खा है उतना और किसी ने नहीं इस पुस्तक मे निष्पक्ष भाव से सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। पृष्ठ १२५ मूल्य ।-) दूसरी बार छपी है।

(२७)शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपालदामोदरतामस्कर एम ए.) भारत में स्वराज्य स्थापना करने वाले इस वीर महापुरुष के जीवन रहस्य को बड़े अच्छे ढंग से समझाया गया है। पृष्ठ १२२ मूल्य ।=) तीसरी बार छपी है।

(२८) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास—(तीन भागो में) यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का तथा जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है। राज्यों की उथल पुथल के वर्णन के साथ ही इस पुस्तक में यह भी दिखलाया गया है कि भारतीय लोगों को उन घटनाओं से क्या शिक्षा लेनी चाहिए और अपने देश को किस तरह स्वतन्त्र करना चाहिए। पृष्ठ ८३० मू० २)

(२९) समाज-विज्ञान—शुरू से लेकर अबतक मानव-समाज किस तरह प्रगति करता गया उसका यह इतिहास है। धर्म, राजसत्ता, नीति, सामाजिक रीतिरिवाज, वैवाहिक पद्धतिया आदि विषयोंपर भारतीय और पश्चिमी लेखकों और विचारको के विचार लिखकर लेखक ने अपने विचार भी प्रकट किये हैं। हिन्दी में इस विषय की यह पहलीही मौलिक पुस्तक है। पृष्ठ ५८० मूल्य १॥)

(३०) हमारे ज़माने की गुलामी—(टालसटाय) इसमें आधुनिक सभ्यता, सरकारें और यन्त्रयुग की भयंकर टीका और समाज को उसकी गुलामी से बचाने के उपाय बताये गये हैं। पृष्ठ १०० मूल्य ।)

(३१) खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र—(श्री रिचार्ड ग्रेग की "Economics of Khaddar" का हिन्दी अनुवाद) अनु० श्रीरामदास गौड़ एम० ए० यह वही पुस्तक है जिसकी महात्मा गांधी जी ने, लाजपतराय जी ने व देश के अन्य विचारशील लोगों ने प्रत्येक भारतवासी को पढ़ने की सिफ़ारिश है। पृष्ठ संख्या लगभग २२४ मूल्य ॥।=)

(३२) गोरों का प्रभुत्व—(लेखक बाबू रामचन्द्र वर्मा) संसार में गोरों के प्रभुत्व का अंतिम घंटा बज चुका। अब संसार की अन्य जातियाँ किस तरह राजनैतिक रंगभूमि पर आ रही है और उससे गोरी जातियाँ किस तरह भयभीत हो रही हैं, यही इस पुस्तक का मुख्य विषय है! पृष्ठ २७४ मूल्य ॥=)

(३३) हाथ की कताई-बुनाई—(अनु० श्री रामदास गौड़ एम० ए०) "इसमें वेदकाल से लेकर आजतक के समय तक का हाथ से कातने और बुनने का इतिहास, उसकी उन्नति तथा अंग्रेजों ने भारत के इस रोज़गार का किस तरह सर्वनाश किया विदेशी वस्त्रों की बाढ़ कैसे बढ़ी, वर्तमान समय में हाथ की कताई बुनाई से भारत को क्या लाभ पहुँच सकता है, आदि बातों पर विद्वत्तापूर्ण विचार किया गया है। पृष्ठ २६७ मूल्य ॥=)" प्रताप (कानपुर) इस विषय पर आई हुई ६६ पुस्तकों में से इसको पसन्द कर महात्मा गांधीजी ने इसके लेखकों को १०००) का पुरस्कार दिया है।

(३४) चीन की आवाज़—चीन की वर्तमान क्रांति को ठीक तौर से समझने के लिए इस ग्रन्थ का पढ़ना बहुत जरूरी है। कैसी खेद की बात है कि चीन हमारा पड़ौसी और भारत में उत्पन्न होने वाले एक महान धर्म का अनुयायी होने पर भी हमें उसके विषय में बहुत कम ज्ञान है। पृष्ठ १३० मू० ।–)

(३५) दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह—(दो भाग) महापुरुष कैसे निर्माण होते हैं यह इस पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात होगा। यह पुस्तक पू० महात्माजी की जीवनी का एक महत्त्वपूर्ण अंश भी है। स्वयं महात्माजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि इस इतिहास के पढ़े बिना उनकी आत्मकथा अधूरी रह जाती है। प्रथम भाग पृष्ठ २७२ मूल्य ॥।) दूसरा भाग पृष्ठ २२८ मूल्य ॥)

(३६) विजयी बारडोली (साठ चित्र) बारडोली ने भारत की लाज रख ली। किसानों की एकता, स्वयंसेवकों का अपूर्व संगठन, सरदार वल्लभ भाई पटेल का युद्ध कौशल तथा बारडोली की वीरांगनाओं की आल्हादजनक कथाओं आदि से परिपूर्ण यह बारडोली सत्याग्रह का शुरू से अन्त तक क्रमबद्ध इतिहास है। स्वराज्य का उपाय है देश मे अनेकानेक बारडोली का उत्पन्न करना अतः प्रत्येक भारतवासी को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ ५२० मू० २)

(३७) अनीति की राह पर—महात्मा गांधी के Self--restrain . Self-Indulgence नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद। आत्म-संयम सन्तति-निग्रह, ब्रह्मचर्य और चरित्र संगठन पर बड़ी ही उत्तम पुस्तक है। प्रत्येक देशवासी को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या नौजवान इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ लगभग १५० मूल्य ॥)

(३८) स्वाधीनता के सिद्धान्त—(ले० टिरेन्स मेकस्विनी) प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी के पास यह पुस्तक होनी चाहिए। संसार में इस पुस्तक का बड़ा आदर है। पृष्ठ २०८ मूल्य ॥)

(३९) जब अंगरेज़ नहीं आये थे ?—उस समय भारतवर्ष की कैसी उत्तम दशा थी यह अंग्रेजी शासन की ओर से बिठाई हुई कमेटी की ही रिपोर्ट है। प्रत्येक भारतवासी के जानने की चीज़ है। पृष्ठ १०० मूल्य ।)

(४०) महान् मातृत्व की ओर—स्त्री-जीवन के प्रारम्भिक कठिनाइयों का दिग्दर्शन कराती हुई, गार्हस्थ्य जीवन की जिम्मेदारियों को दिखलाती हुई, अपने जीवन को पवित्र और सुखमय बनाने वाली स्त्रियों के लिए बड़ा ही सुन्दर पुस्तक है। पृष्ठ २८० मूल्य ॥=)

(४१) हिन्दी मराठी-कोष—(रचयिता श्री पुडलीक) राष्ट्र-भाषा प्रचार के कार्य-क्रम में इस कोष का एक विशेष स्थान है। हिन्दी पढने वाले प्रत्येक महाराष्ट्रीय भाई के लिए यह बड़े काम की चीज है। मराठी भाषा के थोडे बहुत जानकार हिन्दी भाषी भी इससे बहुत लाभ उठा सक्ते हैं। इस कोष में हिन्दी भाषा के मुहावरों का भी एक छोटासा कोष है। पृष्ठ ३७२(बड़े साइज के) मू० २)

अन्य उपयोगी पुस्तकें

(१) भारत के हिन्दू सम्राट् (भू० लेखक रा० ब० गौरीशंकर हीराचंद ओझा) प्राचीन काल में सम्पूर्ण भारत पर शासन करने वाले सम्राट् चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, अशोक, कनिष्क, समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त हर्षवर्द्धन आदि अनेकों सम्राटों का प्रमाणपूर्ण इतिहास है। मूल्य १॥) राजसंस्करण का २॥)

(२) भगवान महावीर—महात्मा बुद्ध के समकालीन भगवान महावीर का यह सबसे बड़ा, उत्तम और प्रामाणिक जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ है। इसे पढ़ने से चित्त में पवित्रता का झरना बहने लगता है। बड़ी ही सुन्दर पुस्तक है। सजिल्द मूल्य ४॥) आर्ट पेपर पर छपा हुआ राजसंस्करण का मूल्य १०)

(३) सूर्य-ग्रहण—शिवाजी के समय का ऐतिहासिक उपन्यास—अनु० बाबू रामचन्द्र वर्मा मूल्य २॥) मूल लेखक पं० हरिनारायण आपटे एम० ए०

(४ पौराणिक कथायें—इसमें भिन्न भिन्न पुराणों से संकलित प्राचीन भारत के महापुरुषों तथा सती देवियों के जीवन की विशेष विशेष घटनाओं का वर्णन है। बढिया कागज पर छपी हुई ८२५ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥=) एक तरफ मूल संस्कृत है। दूसरी तरफ सामने उसका अनुवाद है।

अब आपकी बारी है

'त्याग-भूमि' का उद्देश्य शुद्ध सेवाभाव है इसीलिए तो विज्ञापनों की हज़ारों रुपियों की वार्षिक आय को छोड़ कर, अश्लील और गंदे चित्रों से मुँह मोड़ कर लागत मूल्य से भी कम मूल्य रखकर यह पत्रिका निकाली जा रही है। इसका उद्देश्य तो है

सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्रों में आमूल क्रान्ति करदेना

पर यह महान् उद्देश्य तभी सफल हो सकता जब इसका प्रचार घर-घर मे हो। कोई गाँव ऐसा न हो जहाँ इसकी एक प्रति न जाति हो, कोई क्लब, सोसाइटी, पुस्तकालय और शिक्षित घर ऐसा न हो जहाँ इसका प्रवेश न होता हो।

अभी पत्रिका के तीन हज़ार ग्राहक है। अभी उसका मूल्य ७) प्रति ग्राहक पीछे पड़ता है इस प्रकार

तीन रुपये प्रति ग्राहक घटी सहकर

यह पत्रिका निकाली जा रही है। पर यदि देश-भक्त हिन्दी प्रेमियों की सहायता से इसके बारह हज़ार ग्राहक हो जायँ तो यह अपना खर्चा आप संभाल लेगी।

यदि इस अपील को पढ़नेवाले

प्रत्येक पाठक केवल एक एक दो दो ग्राहक बना देने का संकल्प कर लें तो एक ही वर्ष में बारह हज़ार ग्राहक हो सकते हैं।

धनिकों से

कई विद्यार्थी, बालिका और पुस्तकालयवाले हम से एक दो रुपये कम मूल्य पर और कभी कभी बिना मूल्य ही 'त्यागभूमि' माँगा करते हैं। आप अपनी शक्ति के अनुसार रुपये हमारे पास भेजकर ऐसे लोगों के लिए रिआयती मूल्य पर या मुफ्त में 'त्यागभूमि' मिलने की सुविधा कर सकते हैं। आपकी ओर से 'त्यागभूमि' में सूचना प्रकाशित हो जायगी।

त्यागभूमि के ग्राहक बनने के नियम

(१) त्यागभूमि का वर्ष आश्विन मास से शुरु होता है। यह ग्राहक की इच्छापर निर्भर है कि वह आश्विन मास के अंक से ही ग्राहक बने या ग्राहक बनते समय जो महीना-चल रहा हो उस मास से। अकसर लोग शुरु के अंक से ही ग्राहक बनते हैं ताकि उनके पास वर्ष भर की पूरी फाइल रहे और इसमें दोनों ओर सुभीता भी रहता है। ग्राहक बनने का आर्डर भेजते समय स्पष्ट लिख देना चाहिए कि किस अंक से आप ग्राहक बनना चाहते हैं

(२) नमूने की कापी बिना मूल्य भेजने का नियम नहीं है। नमूना देखने वालों को ॥) के टिकट भेजना चाहिए। पर ऐसे लोगों के लिए जो नमूना देखने के इच्छुक हैं, हमने ३ मास तक ग्राहक बनने का नियम रखा है। तीन मास के लिए उन्हें १।) मनीआर्डर द्वारा भेज देना चाहिए या वी० पी० द्वारा मंगा लेना चाहिए। जब तीन अंक वे देखलें और उन्हें संतोष हो जाय तब वे वार्षिक ग्राहक बन सकते हैं।

(३) जहां तक हो रुपया मनीआर्डर से ही भेजना चाहिए। क्योंकि वी० पी० का रुपया कभी कभी पोस्ट ऑफिस से महीनों में जाकर मिलता है। जब तक हमें रुपया नहीं मिलता हम ग्राहकों में नाम नहीं लिख सकते। इधर ग्राहकों को इसके लिए काफ़ी दिन इन्तज़ारी में रहना पड़ता है। मनीआर्डर से भेजा रुपया फौरन ही मिल जाया करता है।

'त्यागभूमि' के सम्बन्ध में हमारे पास देश और विदेश से सैकड़ों प्रशंसा पत्र आए हुए हैं

उनमें से कुछ यहां देते हैं—

प्रताप (कानपुर)

त्यागभूमि के 'हर हर वरक़ में शरहे तमन्ना' रहती है। लेख इतने सुन्दर और विद्वत्ता पूर्ण होते हैं कि उनका पढ़ना ज्ञानप्रद और हृदय को ऊंचा उठाने वाला होता है। शुद्ध साहित्य एवं देश दशा का यथार्थ दिग्दर्शन अन्यत्र मिलना कठिन है। इसलिए हम हिन्दी भाषा-भाषी भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि वे 'त्यागभूमि' के अवश्य ग्राहक बनें।

पत्रिका सर्वाङ्ग सुन्दर है, सौन्दर्य में सर्वत्र सादगी की शोभा, उच्च आदर्श की ज्योति तथा त्याग का तेज दृश्यमान है। —आज (काशी)

तरुण राजस्थान (अजमेर)

लेखों में प्रवाह है, ओज है, मौलिकता है और कविताएँ प्रसाद गुण से पूरित। सारांश यह है कि पत्रिका सब तरह से सुन्दर और उपयोगी है।

अभ्युदय (प्रयाग)

पत्रिका सब प्रकार से गृहणीय है और हम इस का अधिकाधिक प्रचार चाहते हैं।

देश (पटना)

'त्यागभूमि' का उद्देश्य बड़ा ही पवित्र और राष्ट्रीय भावों से पूर्ण है। यह पत्रिका सारे देश के लिए गौरव की चीज़ होगी।

श्री मातादीन शुक्ल साहित्य शास्त्री स० सम्पादक 'सुधा'

त्यागभूमि केवल ४) वार्षिक मूल्य में और फिर भी ६) ६॥) मूल्य की पत्रिका का सा ठाठ-बाट साज-सामान। इतना त्याग करने का साहस, शक्ति और भावना 'त्यागभूमि' के सिवा और किसको है? 'त्यागभूमि' के लेखों का चुनाव, विषय-विभाग और चित्रादि सभी उच्च कोटि के हैं।

पं० रामदास गौड़, एम० ए० काशी

'त्यागभूमि' के लेख उच्च कोटि के और अत्यन्त उपयोगी दीखते हैं। इस से सस्ता सर्वाङ्ग भूषित हिन्दी मासिक पत्र तो मैं कोई और नहीं जानता

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी सम्पादक 'विशाल भारत' (कलकत्ता)

'त्यागभूमि' में अच्छी से अच्छी चीज़ कम से कम दामों में देने की प्रवृत्ति है। शुद्ध सात्विक भोजन से शरीर को जो लाभ होता है, वही 'त्याग भूमि' के लेखों से उसके पाठकों को होगा।

श्री वियोगी हरि, पन्ना

'त्यागभूमि' त्यागभूमि ही है। 'प्रभा' के बाद आज कहीं ऐसी विशुद्ध राष्ट्रीय पत्रिका का दर्शन हुआ है। सम्पादन की दृष्टि से तो सचमुच 'त्यागभूमि' अद्वितीय है। इसके आदर्शों पर क्या लिखूं? बड़े ही खरे, ऊँचे और दिव्य हैं।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, बनारस

थोड़े मूल्य में ऐसी सुसम्पादित और सुन्दर पत्रिका मिलना दुर्लभ है। सम्पादन बड़ी योग्यता से हो रहा है।

मार्च सन् १९२९ में मुद्रित।